हिन्दी

# शीराज़ा

3467

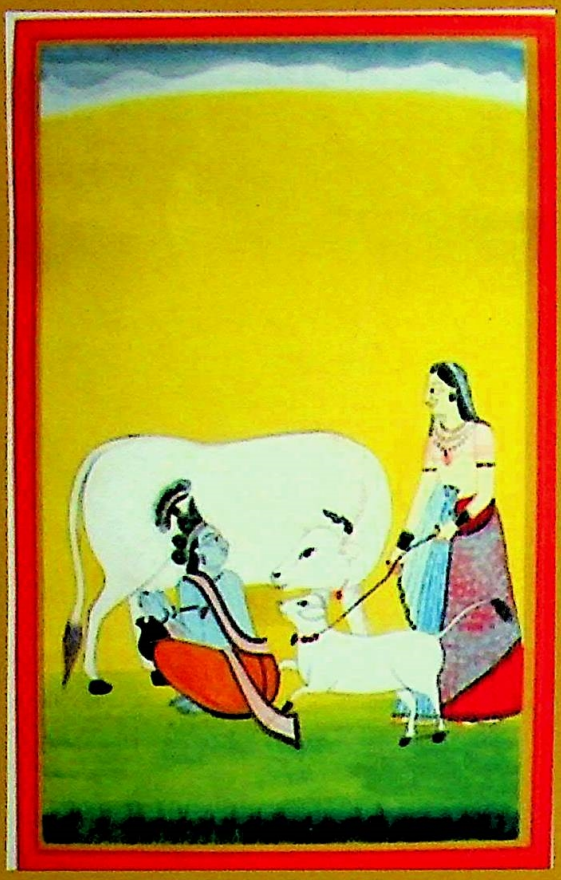

जे. एंड के. अकैडमी ऑफ आर्ट, कल्चर एंड लैंग्वेजिज़

जम्मू

May/2011

3467

J&K ACADEMY OF ART CU

ऑफ आर्ट, कल्चर एंड लैंग्वेजिज़,

द्विमासिक

# शीराज़ा

हिन्दी

अप्रैल–मई 2011

*प्रमुख संपादक*

ज़फ़र इक़बाल मन्हास

*संपादक*

नीरू शर्मा

जे० एंड के० अकैडमी ऑफ आर्ट, कल्चर एंड लैंग्वेजिज़,

**SHEERAZA** Regd. No. : 28871/76 April-May 2011
(Hindi)

वर्ष : 47 अंक : 1 पूर्णांक : 202

★ पत्रिका में व्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं। इनसे जम्मू-कश्मीर कला, संस्कृति एवं भाषा अकैडमी का सहमत होना अनिवार्य नहीं है।

**प्रकाशक** : सचिव, जम्मू-कश्मीर कला, संस्कृति एवं भाषा अकैडमी जम्मू-180 001

**पत्र-व्यवहार** : संपादक, शीराज़ा हिन्दी, जम्मू-कश्मीर कला, संस्कृति एवं भाषा अकैडमी जम्मू-180 001; दूरभाष : (0191)-2577643, 2579576

**मुद्रक** : क्लासिक प्रिंटर्ज़, नेशनल हाइवे, बडी ब्राह्मणां, जम्मू, दूरभाषा-(01923)-220243, 94191-49293

**शुल्क दर** : एक प्रति 10 रुपये; वार्षिक 50 रुपये

# संपादकीय

आज का जीवन इतना विशाल, बहुमुखी, दुरूह एवं जटिल हो गया है कि उसे समग्रता से देखना असंभव-सा प्रतीत होता है। इसीलिए उसे एकसाथ न देखकर विभिन्न कोणों से देखा जाता है। जीवन के सत्य को आंशिक रूप से अनुभव कर यदि लेखक उसे पूरा प्राप्त कर ले तो उसे सफल कहा जा सकता है।

आज का लेखक अपनी कला के स्वभावानुसार नवयुगीन संवेदनाओं को ग्रहण कर, नवीन समस्याओं से लोहा लेते हुए नित नए से जूझ रहा है। वह सचेत है इसीलिए जीवन के सत्य को गहराई से देख-परख, जीवन के प्रति अपनी निष्ठा व्यक्त करने के लिए प्रयासरत है। वह जीवन के संग्राम से अलग नहीं रह सकता। उसे अपने चारों ओर के समाज के प्रति अपने कर्त्तव्य को निभाना पड़ता है। संवेदनशीलता उसके चेतन जीवन और अवचेतन मन को संचालित करती रहती है। तदनुकूल उसकी शब्दावली, भाषा-शैली आदि में परिवर्तन आना स्वाभाविक है। उसकी वाणी प्रेरणाजन्य होती है। प्रेरणाजन्य होने के कारण ही उसकी सर्जनात्मक प्रतिभा का संबंध जीवन से स्थापित हो जाता है।

आज रचनाकार विज्ञान के नवीनतम आविष्कारों के प्रकाश में अपने जीवन और मन को मापने का प्रयास कर रहा है। इन सब का प्रभाव उसके सर्जनात्मक साहित्य, उसकी कला, उसकी शैली आदि पर पड़ रहा है। साथ ही वह नवीन मनोवैज्ञानिक, सामाजिक, नैतिक, आर्थिक, राजनैतिक आदि विभिन्न समस्याओं से जूझ रहा है। आधुनिकता का दावा करने वाला कोई भी चेतन लेखक या कलाकार इन बातों से विमुख नहीं रह सकता। विमुख रहना उसके लिए आत्महत्या के समान होगा। वह तो चौमुखी यथार्थता को हृदय रस में पगाकर कल्पना के सहारे अपने चारों ओर के अनैतिक, भौतिक, आध्यात्मिक झाड़-झंखाड को दूर कर ऐसे उन्मुक्त, स्वच्छन्द वातावरण की सृष्टि करता है जिसमें मानव मानव के रूप में जीवित रह सकता है।

**नीरू शर्मा**

## इस अंक में


- आलेख
  - हलीम की कविता में प्रेम और सौंदर्य/प्रो० कृष्णा रैणा/1
  - हिन्दी और उसकी प्रयोजनीयता/डॉ० श्रवण कुमार मीणा/9
  - समकालीन डोगरी नाटक रंगमंच/मोहन सिंह/13
  - कबीर : ढाई आखर प्रेम का/राजेन्द्र परदेसी/18
  - पाडर की दलित-भोट जनजाति और उसका लोक-जीवन/सुभाष चन्द्र/25
  - नारी जीवन का दस्तावेज़/'हैमबरगर'/सविता कुमारी/35
- संस्मरण
  - फरिश्ते से बेहतर है इन्सान होना/पद्मा सचदेव/39
- कहानी
  - मरी हुयी मछली/ओम गोस्वामी/45
  - नागपाश/योगिता यादव/52
  - बड़े फेर वाला लहंगा/डॉ० पीयूष गुलेरी/73
  - ग्लॉसी स्टोन/प्रमिला वर्मा/80
- लघुकथा
  - हथियार/राम कुमार आत्रेय/87
  - कयामत/चमत्कार/कारण/जसविंदर शर्मा/89
  - अतिथि कक्ष/चोरी/रामयतन यादव/92
- कविता/गीत/गज़ल
  - तस्वीर/अमित मेहता/17
  - गज़ल/बलजीत सिंह रैणा/24
  - सच कहता हूँ देखा मम्मा/चंचल डोगरा/34
  - गज़ल/किशन तिवारी/88
  - गज़ल/कमलजीत चौधरी/95
  - गीत/कुछ अपरूप नहीं/डॉ० निर्मल विनोद/97
  - मछुआरे नयन/शर्मनाक/श्याम विहारी/98
  - थरथराहट/धरा और सागर/अरुण कुमार बजाज/99
  - भरी जवानी में छीन लिया/मृत्यु/नरेश कुमार 'उदास'/100
  - गीत/कृपा शंकर 'अचूक'/103
  - घोंसला/राजराही/104
  - मैं देना चाहता हूँ तुम्हें/ओम नागर/105
  - नदी खामोश है/तुम्हारी चिट्ठियां/मोहम्मद मुमताज़ 'हसन'/107
  - चिट्ठी/सुशील बेगाना/109
  - गज़ल/अजय 'अज्ञात'/110
  - एक कत्ल/एकाकी/राजीव कुमार त्रिगर्ती/111
  - नियमन प्रकृति का/संत्रास बनाम आस/कान्ता शर्मा/113
  - आज/कुहेली भट्टाचार्य/115
  - संदेश/हरचरण सिंह सूदन/116
  - आज़ादी/डा. गुरु प्रसाद शर्मा/117
  - गीत/बृजमोहन/125
- नवांकुर
  - महफिल/अर्पिता सक्सेना/118
  - एक टुकड़ा आसमान/अरविंद शर्मा/119
- व्यंग्य
  - श्वान कथा/सीताराम गुप्ता/122
- अनुवाद ( पाकिस्तानी उर्दू कहानी )
  - एक आदर्शवादी की मौत/मूल० अज़रा वकार/अनु० केवल गोस्वामी/126
- समीक्षा
  - 'सुकीर्ति' की मौलिक पहचान करवाती कविताएं/डा० रमेश सोबती/129
  - स्वागत है-जन जीवन से रची-बसी कविताएं/डा० आदर्श/133

# हलीम की कविता में प्रेम और सौन्दर्य

❑ प्रो० कृष्णा रैणा

शंभूनाथ भट्ट 'हलीम' आज की कश्मीरी कविता के एक प्रमुख हस्ताक्षर हैं। इनका जन्म एक जुलाई 1924 को अनन्तनाग जनपद के कुलगाम क्षेत्र में अरह गाँव में हुआ है। इनके पिता का नाम श्री माधवराम भट्ट और माता का नाम श्रीमती जानकी था। हिन्दी, कश्मीरी लेखन और अनुवाद सभी क्षेत्रों में इनका महान योगदान है। समय-समय पर मैंने हलीम की गज़लों में संवेदना हलीम की कविता में हिज़रत का मर्म आदि लेख लिख कर इनके काव्य को समझाने की कोशिश की है। यह प्रयास इनके काव्य में प्रेम और सौंदर्य को तलाशने की है। इस लेख का आधार वह कविताएं हैं जो व्यथि हुँद्य आलव (पुकार वितस्ता की) कश्मीरी कविता संग्रह में 2002 में प्रकाशित हैं।

प्रेम मानव जीवन की शाश्वत अनुभूति है। इसके बगैर मनुष्य का जीवन नीरस है। यही प्रेम वात्सल्य, शृंगार, स्नेह, मानव प्रेम, प्रकृति प्रेम और अध्यात्म के प्रति प्रेम विभिन्न धाराओं में प्रस्फुटित होता है। प्रेम मनुष्य की सहज प्रकृति है और विरह उसकी आत्मा है। प्रेम शारीरिक मिलन से ऊपर है इसमें कोई छल-बल भी नहीं है, इसमें न कोई इच्छा है और न कोई फरेब ही। यह नि:स्वार्थ भावना है यह परमात्मा का ही पर्याय है :-

अजब यि लोलत्ततार त अथ गरज़ न तमाह शामिल।
न काँह फरेब अथ सूत्य न लाग राग न कांह छल बल।
खोदा परस्ती हन्ज़ योदवय मिसाल काँह मंगि ज़ाह
यह य याच़ छय मोयस यथ न सपदी काँह गाँगला।[1]

**हिन्दी रूपान्तर**

(प्रेम की धारा निर्मल न गरज़ न इच्छा।
इसमें न फरेब न राग न छल-कपट।
न स्वार्थ न भेदभाव केवल
यह खुदा की निर्विवाद आराधना॥)

हलीम प्रेम को व्यक्तिगत दायरे से निकाल कर उसे समस्त संसार में बाँटना चाहते हैं इसे 'स्व' को 'पर' में कर लोकमंगल की भावना का विस्तार हो सकता है और संकीर्णता

---

*1. व्यथि हुँद्य आलाव, आदनुक गोबुर, पृष्ठ 138*

की परिधि मिट सकती है। कवि अपनी प्रेयसी का आह्वान करते हैं कि आओ हम अपने प्यार को सबके लिए प्रस्तुत रखें :

बाल्य!
वोथ पंख बेह मंज़स आरपलस निश।
हुतिनस-येति हियपान छु खोटमुत।
वछ मुच़राविथ कोदरतक्य पाठ्य
हुब बारारा वव
आरज़ान थावव लोलुक सौदा
मायिहत्यन क्युत पोशेमत्यन क्युत ? ।[1]

**हिन्दी रूपान्तर प्रेयसी**

उठ कल-कल करती नदिया के बीच
बड़े उस पत्थर पर बैठें
देख यहाँ हिय फूल अपने
को छिपा कर किस प्रकार
प्रकृति में अपने प्यार की गन्ध फैलाता
आओ हम भी प्यार के मारों के लिए
प्यार का सौदा बिखेर दें।

कवि कल्पना की उड़ान भरना चाहता है यदि उसकी प्रेमिका उसका साथ देगी, प्रेमिका के साथ उसे सारी प्रकृति सुखकर लगेगी, आह्लादकारक लगेगी। प्रेमिका के बगैर उसे सारा संसार सारहीन लगेगा। कवि लिखते हैं :-

सोंथ सोज़्यम पोशि डाल्य सूत्य योदवै रोज़िहेम।
जाम छेत्य गछनम वोग़ाल्य सूत्य योदवै रोजिहेम।
चॉन्य द्रिय म्ये चानि रोस अख रछ यि दुनियाँ सो शकरान
गरज़ोल सपदम्य मशाल्य सूत्य योदवै रोज़िहेम॥[2]

**हिन्दी :** वसन्त मुझे फूलों का गुलदस्ता भेजेगा।
यदि तुम्हारा साथ मुझे मिलेगा।
मेरे फीके आँचल लाल रंग के हो जायेंगे।
यदि तुम्हारा साथ मुझे मिलेगा।
तुम्हारी कसम यह संसार ज़रा न भाता
अन्धकार मयी राहें प्रकाशमान होंगी।

---

*1. सोन्य व्यायि हुहा आलव, पृष्य 27*

*2. पृष्ठ 306*

यदि तुम्हारा साथ मुझे मिलेगा।

कवि के अनुसार प्रेम मनुष्य की सहज प्रवृत्ति है और विरह उसका चर्मोत्कर्ष है। व्यक्ति विरह की अनुभूति के बिना निर्जीव है, इसी से चेतना आती है आत्मा का विस्तार होता है। कवि कहते हैं :-

हकीकत क्या पजर क्या आकबत क्या।
येहय फिकिरा तँ ज़िकिरा गाटजारस।
दिलुब दुब दुब मगर वखरय बनाम शेछ़।
फ़कत अख लोल रछॅरावान करारस।
अजब रसमा वुछुम जानॉन कोचुक।
युसुय रावान सुय प्रावान निगारस॥[1]

हिन्दी : वास्तविकता सत्य क्या प्रकृति क्या
बुद्धि लगी जानने में सब कुछ
दिल की धड़कन कुछ और बताती
प्रेम केवल मूर्त हो धरा पर।
प्रेम का एक अजीब तरीका देखा
यहाँ जो खोया उसी ने पाया सब कुछ।

कवि के अनुसार प्रेम सोच-विचार या बुद्धि का विषय नहीं है, यह एक कोमल अनुभूति है। इसमें ममत्व होता है जिससे हमें शान्ति मिलती है। सौंदर्य के गम्भीर चिन्तन के लिए हृदय का झुकाव ही प्रेम है। प्रतिकूल वेदनायें दु:खद हैं और दु:ख की अनुभूति वेदना है? काव्य का जन्म शुद्ध अनुभूति में होता है अत: काव्य की वेदना अनुभूत्यात्मक है यही अंग्रेज़ी कवि शैली का भी मानना है। ऐसा ही हलीम की कविताओं की पड़ताल करने पर भी देखा जा सकता है। वे कहते हैं :-

लोलनारन चा़ल्यमत्य कम कम सितम।
ज़ाहरक्यन प्यालन बनोवुन जामि जम।
लाज्य अशिस ददराय रातस शवनमस।
सुबह थोवुन पेशकश मोख्तुक हल्म।[2]

हिन्दी : प्रेमाग्नि में जल-जल कर दु:ख भोगे,
उसी ने हलाहल प्याले में अमृत पान किया।
रात-भर शबनम में अश्रुधारा बहाई।

---

1. *पृष्ठ 247*
2. *पृष्ठ 249*

सुबह दामन में मोतियों का अंबार देखा।

कवि कहते हैं कि मैंने पर्वत शृंखलाएं पार की, वैरागी बनकर प्रेम की खोज में निकला। प्रेम के सागर को पार करने के लिए अनथक प्रयास किया :-

कोहबाल छ़डिंम जॉम गडिंम सूरमत्यन हन्दय
छ़ारान रोवुस लोल सॅदरस तार लो लरे॥[1]

**हिन्दी :** पर्वत शृंखलाएँ पार की वैरागी बनकर
प्रेम सागर का पार पाने में खो गया।

कवि के अनुसार कुछ खोकर ही प्रेम को पाया जा सकता है। जो कुछ नहीं खो देता उसे कोई प्राप्ति नहीं होती है। पुरानी कहावत है सिर काट कर ही प्रेम पथ पर चलना पड़ता है। अपना सब कुछ मिटा कर ही प्रेम मार्ग में प्रवेश मिल सकता है। कवि प्रकृति के माध्यम से प्रेम की तीव्र अनुभूति और त्याग को दर्शाते हैं। उनके अनुसार प्रेमी घर की अट्टालिका पर चन्द्रमा से विनती करते हैं। जिसके नेत्रों से अश्रु की धारा न बही हो वह प्रेमाग्नि का ताव क्या जाने! पोंपुर ने अपने आपको दीप की ज्वाला में भस्म किया। फूल ने अपने आंचल को फाड़ दिया तभी सुगन्ध का बवण्डर फैला। जब तक न जलते हुए अँगारों को हिलाया जाये अग्नि के ताप को अनुभव नहीं किया जा सकता है। कवि का बड़ा मार्मिक वर्णन है :-

ज़ूनि डबि प्यठ रॉच़ छय वावन ज़ूनि कुन जारी करान
यस न वोथ ददरायि ओश तसलोल तावच क्याह खबर।
चाख जामन दयुत गुलन अॅद मुशक अंबर द्रावनोन
येम्य न फ्युर दयुत नॉर त्यंगलन तस अलावच क्याह खबर।[2]

**हिन्दी :** अट्टालिका पर चान्द से पूछा रात-भर
जिसने अश्रुधारा न बहाई प्रेम अग्नि क्या जाने
पुष्प ने आँचल फाड़ गन्ध बिखरी चारों ओर।
अंगारों से जो न खेला ताप वह जाने कहां से।

कवि हलीम ने प्रेम की तीव्रता प्रकृति के माध्यमों से व्यक्त की है। उसने भिन्न उपादानों को सहज रूप में लिया है और अनुभूति व्यक्त की है। कवि कहते हैं फूल की पत्ती का झुकाव प्रेम की नज़ाकत को व्यक्त करता है, गुलाब के हृदय की उदारता देखो कैसे काँटों से प्रेम करता है, प्रेम के कारण ही अपने को मोड़-तोड़ के ऊपर चढ़ जाता है। गुलाल की छाती प्रेमाग्नि के कारण ही जल कर राख हो गई है, पता नहीं उसका प्यार कहाँ सोया पड़ा है। कवि व्यक्त करता है :-

---

*1. व्यॅथि हुॅद्य आलव, पृष्ठ 309*

*2. वही, पृष्ठ 395-96*

नज़ाकथ पोश वॅथरच रोशॅवन्य त्राय।
गुलावच दिलबरी कन्डेचन बरान माय।
खसान पेचान वुलमन्य वेरिचाने।
मदस चानिस फरक डीन्ठम न सर साये।
गुलालस सीनॅ दोदमुत लोलॅ तावय।
खबरकति लोल लर त्राविथ बेपरवाये।[1]

**हिन्दी :** नज़ाकत फूलों के पत्तों पर देती सन्देश।
गुलाब की दिलबरी भर देती कान्टों में प्यार
इश्क पेचान मुण्डेरों में चढ़ बैठता
प्रेम के लिए
गुलिलाला ने अपने वक्ष में प्रेम की जलन छिपाई
प्रेम बेपरवाह होकर शान्त बैठा है।

हलीम नायिका से अपने प्रेम का वर्णन कर उसे आमन्त्रण देता है। इसके लिए भी उसने प्रकृति के प्रतीक लिये हैं जो प्रेम की तीव्रता और शैली की उत्कृष्टता दिखाते हैं। उनके नायक और नायिकाएँ दोनों प्रेम में तड़पते हैं। कवि हलीम कहते हैं :-

बाल्य यूत मय असि तम्बलाव लोलो।
रम्बॅवुन रोय नअन्य पाठय हाव लोलो।
ईच़ क्रेशान राथदोह च्यानि वेरे।
सानि आंगन ति कुकिल पॉर्य त्राव लोलो।
रोनि गोडनय छोन्य करान बस उल्ये।
नाज़ल्ये दीदार हाव लोलो।
होलन चान्य बोलनोव हलीम लोल बॉथ।
नतॅ अन्दर्युम दादय कस भाव लोलो।[2]

**हिन्दी :** हे बाला। मुझे इतना मत तड़पाओ।
अपना सुन्दर मुखड़ा दिखाओ।
तेरे लिए रात-दिन मैं तड़पता हूँ।
मेरे आँगन में कोयल बन में आ जाओ।
पाँव में घुँघरूओं की मधुर ध्वनि करके
मुझे अपना दीदार दो।
तुम्हारे प्यार ने हलीम को प्रेम गीत गाने पर मजबूर किया।

---

*1. वही, पृष्ठ 393*
*2. वही, पृष्ठ 246*

वरन् अपना दर्द किस को बताये॥

हलीम स्वयं ही नायिका बनकर प्रेम की तीव्रता का भी वर्णन करता है। वे एक नायिका के उद्‌गार प्रकट करते हैं :-

नूरि ललवुन नार थोवथम हरि मदनो।
ब्यूठहम कथ शायि छिफदिथ ज़ूरि मदनो।
आश आसम सोंतवावस सॉत्य यिख लारान।
वन्दअ गलि शिठन्यार ज़लि लगि छिम्ये इशारन।
लथ लजिम येलि सोंतअ वुछमख दूरि मदनो।
ब्यूठ हम कथ शायि छिप दिथ चूरि मदनो।
छि ज़ेतस येलि बालदामन्य छाल मारान ऑस्य।
कचिलटि फीर्य-फीर्य वोन्थम चेशम मसखॉस्य।
वह्यंतिमन पयमॉन सपनिस सूर मदनो।
ब्यूठहम कथ शायि छिपदिथ ज़ूरि मदनो।[1]

अर्थात् हे मेरे प्रेमी! तुम मुझे प्रेमाग्नि देकर स्वयं किसी जगह छिप कर बैठे हो। मुझे आशा थी कि बसन्त की बयार में तुम आओगे और मुझे संकेत दे दोगे। मुझे धक्का लगा जब मैंने तुम्हें बसन्त में दूर से ही देखा। क्या तुम्हें याद है जब हम पर्वत की तलहटियों में क्रीड़ा करते थे, तुमने कितनी ही बार मेरे नेत्रों को प्रेम मस्ती के प्याले बोला था, अब वही मेरे लिए पयमाने बन गये क्योंकि अब तुम पता नहीं कहाँ छिप कर बैठे हो।

हलीम ने प्रकृति में परमतत्व को पहचाना है वह उससे रागात्मक सम्बन्ध स्थापित करना चाहता है। वह प्रेयसी-सा आह्वान करता है कि वह भी प्रेम द्वारा धरती को मानवता का स्वर्ग बना दे। मानव मंगल की इस भूमिका को प्रस्तुत करने में हलीम की काव्य-चेतना की परिपक्वता का आभास मिलता है। कवि कहते हैं :-

आलवस आलव दिवान अज़ति हुस्नस पथ छिवान।
वुलमन्यन खसनुक मज़र प्रान्य कथ मॉन्यथ-मॅटाल।
मोहब्तस अब्दुक दुआ प्रानि नोव नोशि बेरया।
बोज़ हलीमन्य खबर प्रान्य कथ मॉन्यथ मॅ टाल।[2]

हिन्दी : आज भी सौंदर्य में आकर्षण है।
सौंदर्य से प्रेम उत्पन्न होता है।
पेचान आज भी प्रेम के लिए दीवारें
लाँघता है ऊँचा चढ़-चढ़ कर

---

*1. कुल्याते आज़ाद, पृष्ठ 70*
*2. वही, पृष्ठ 34*

इसे पुरानी बात मानकर मत टाल।
प्रेम तो शाश्वत आशीष है
नयी दुल्हन के प्रेम की तरह
हलीम की यह मान्यता
पुरानी बात मान कर मत टाल॥

अन्य कश्मीरी कवि अब्दुल अहद आज़ाद भी मनुष्य को भेदभाव भुलाकर एक होने की बात करते हैं। वे भी मनुष्य से कहते हैं कि हे मनुष्य! तुम विवेक के प्रकाश स्तम्भ थे परन्तु आज तुम आग बन गये हो, तुम इतने निर्दयी बन गये हो कि सारी इन्सानियत ही बदनाम हो गई है

च ओसुख गारजारूक नूर, चे लोगुथ नार इन्सानो।
करथ इन्सानियत बदनाम, हा बेआर इन्सानो॥[1]

अब आज़ाद स्वयं ही समाधान देते हैं। वे मानते हैं कि इस समय कश्मीरी भेदभाव की भावना से ग्रस्त हैं, इनमें समता नहीं है इसी कारण वे वितस्ता से प्रार्थना करते हैं कि इनमें एकता का भाव पैदा करो ताकि वे अपने जीवन में सफल हों और समस्त विश्व में समभाव पैदा हो :-

दोग्न्यारन मॉर्य काशिर्ये
हय छनावतवक कुनिरुक सोज़,
यिम ति गछहॉन तार तरिये,
सोन्दरिये बोज़ि म्यान्य ज़ार।[2]

इस प्रकार से हलीम आज़ाद से प्रभावित हैं। वे लल्लद्यद की प्रेमभावना से भी प्रभावित हैं। यद्यपि लल्लद्यद की प्रेमभावना बिल्कुल अलग है परन्तु प्रेम की तीव्रता और भेदभाव भुलाकर एक होने का भाव उन्होंने भी व्यक्त किया है। लल्लद्यद ने ज्ञान और कर्म के पश्चात् प्रेम की अनुभूति को ही प्रमुख माना है। वह भी कहती हैं कि भक्ति में सारी द्वैत भावना समाप्त हो जाती है और प्रेमी स्वयं प्रियतम बन जाता है, यह प्रेम चैतन्यपूर्ण है।

हलीम लल्लद्यद की प्रेमभावना को ही अपने आध्यात्मिक प्रेम का आधार मानते हैं। यहाँ मानव-प्रेम आध्यात्मिक प्रेम बनकर शाश्वत रूप लेता है। कवि कहते हैं :-

पाज़ि मनॅ बरि युस लोल मयखानस
तस मस्तानस बाल लगि नाव।
भावनायिसान युस मसफिरि बानस
तस मस्तानस बाल लगि नाव।

---

*1. व्यॅथि हुॅद्य आलव, पृष्ठ 282-283*

× × × × × × × × × × × ×
लल्लि येमि कलि बोर लोल भगवानस

तथ वजदानस जय जयकार।
वॉच येमि अभ्यास चन्द्रॅम थानस,
तथ इरफानस जय जयकार।
पत वथ आसनच सथ इन्सानस,
दिथ गयि पानस जीवन मोखत।
अत गथ सोरि न ज़ाँह मोय खानस,
अथ विज्ञानस जय जयकार।
मोज़ान ब्योन हेन्दिस मुसलमानस,
वीद कोरानस मन्त्र कुनी काथ।
वातुन सारिनय कुनिसय थानस,
शिव सुबहानस जय जयकार।[1]

अर्थात् जो मयखाने को मन रूपी प्यार से भरेगा और प्रेम की मदिरा प्यालों में भरेगा वही असली मस्ताना कहलायेगा। जो भावना के साथ अपने और गैर का फर्क मिटायेगा वही प्यार का मस्ताना है। लल्ला ने जिस ढंग से भगवान से प्रेम किया उसको हलीम नमन करते हैं। जिस योग और अभ्यास से वह चन्द्रस्थान पहुँच गई उसको हलीम नमन करते हैं। उसने जीवन मुक्तावस्था की सरल ढंग से व्याख्या की और जो इस मनःस्थिति का अनुभव करे वही जन्म-मरण के बन्धन से ऊपर उठकर दिव्य ज्योति का अनुभव करता है उसको हलीम नमन करते हैं। जिसने हिन्दू और मुसलमानों को धर्म के वास्तविक स्वरूप से अवगत कराया और धर्म की एकता पर बल दिया हलीम उसके इस ज्ञान को नमन करते हैं।

हलीम चिन्तन का प्रयोग सामाजिक धरातल पर करते हैं और जीवमात्र में समता, एकात्मबोध हिन्दू-मुसलमानों की एकता आदि के रूप में विश्व मंगल की भावना को व्यक्त करते हैं। हलीम एक भक्त कवि भी हैं, शाश्वत चिन्तन में आस्था भी रखते हैं, प्रेम और सौंदर्य के मर्म को सूक्ष्म रूप से पहचानते हैं, गाँधीवाद से प्रभावित भी हैं। सामाजिक सरोकारों के प्रति सजग रहने वाले कवि भी हैं। उनके गीत साधारण, सहज सौंदर्यबोध से आरम्भ होकर सनातन शाश्वत सत्य के बोध पर समाप्त होते हैं, यही उनकी सौंदर्य की अवधारणा है।

**728 ब्लाक 53**
**सेक्टर 4**
**न्यू शिमला-9**
**171009**

ooo

# हिन्दी और उसकी प्रयोजनीयता

❑ डॉ. श्रवणकुमार मीणा

मानव सभ्यता के उत्तरोतर विकास में सभ्यता एवं संस्कृति की परिनिष्ठता, परिवर्धनता के साथ-ही-साथ भाषा भी संस्कारित होती गई। आदिकाल से ही मनुष्य की मूलभूत आवश्यकताओं रोटी, कपड़ा और मकान की तरह परस्पर विचार-विनिमय का उपादान 'भाषा' ही रही है, बिन भाषा के अभिव्यक्ति की कल्पना अर्थहीन है अर्थात् भाषा के बिना मनुष्य, समाज और राष्ट्र गूँगे हैं। 'भाषा' मनुष्य को मनुष्य से जोड़ने, संस्कृति का हस्तान्तरण-परिष्करण करने, व्यापार-वाणिज्य या नई खोजों के साथ समाज को संगठित करने का सशक्त माध्यम है। भाषा लोकतन्त्र को स्वर देती है, अर्थव्यवस्था को मजबूती देती है, और बाज़ार को उपभोक्ता भी भाषा ही देती है। दूसरे शब्दों में कहें तो भाषा का मानव, समाज, संस्कृति और बाज़ार से अटूट रिश्ता रहा है। हाँ, विज्ञान की उन्नति मीडिया का बढ़ता आतंकी दबाव और वैश्विकवादी बाज़ार व्यवस्था ने 'भाषा' को मजबूती तो अवश्य दी पर उसे प्रयोजन की दृष्टि से दो धड़ों में विभक्त कर दिया। आज के परिदृश्य में आधुनिक प्रयोजनों के लिए हिन्दी का जो स्वरूप उभर कर आ रहा है, जिसका प्रयोग-प्रचलन बढ़ रहा है उससे प्रतीत होता है कि हिन्दी एक अन्तर्राष्ट्रीय भाषा बनने के क्रम में है, भारतीय भाषाओं में हिन्दी अग्रणी तो है ही निजी क्षेत्रों में भी भाषा का प्रयोजनीय स्वरूप उपयोगी सिद्ध हो रहा है।

मनुष्य को यदि हम सामाजिक प्राणी मानें तो भाषा सामाजिक वस्तु है, क्योंकि वही सामाजिक व्यवहार का माध्यम है। भाषा के व्यवहार के प्रयोग का संदर्भों की दृष्टि से आकलन करें तो हम पायेंगे कि भाषा के दो वर्ग हो सकते हैं। प्रथम-मनुष्य भाषा के जिस रूप द्वारा आनन्दानुभूति करता है, रस और सौन्दर्य के साथ मानवीय संवेदनाओं का संरक्षण-संवर्धन करता है। दूसरा-मनुष्य अपने दैनिक व्यवहार और कामकाज में भाषा के जिस रूप को प्रयुक्त करता है। इसका अर्थ यह हुआ कि हिन्दी साहित्य सृजन की भाषा 'हिन्दी भाषा' है जो शब्द संरचना, पदावली, व्याकरणों की प्रयुक्तियों, छन्द, रस, अलंकारों को लेकर चलती है और जो भाषा किसी प्रयोजन विशेष के लिए प्रयुक्त होती है वह 'प्रयोजनीय हिन्दी भाषा' है।

भाषा के संदर्भ में 'प्रयोजनीय भाषा' से आशय भाषा के रूप से है जो किसी उद्देश्य विशेष से सम्बन्ध रखती है। वह प्रयोजन सापेक्ष, सीधा और सपाट होता है अर्थात् अभिधेयार्थ शब्द शक्ति के आसरे पलता है। इस दृष्टि से हिन्दी का प्रयोजनीय रूप वही भाषा रूप होगा

जो औपचारिक है। विविध प्रयोजनों के लिए उसके प्रयोजनीय रूप को व्यावहारिक भाषा भी कहा जा सकता है। यह तो शाश्वत सत्य है कि हिन्दी भाषा भारतीय जनमानस के भावों, विचारों, संवेदनाओं को स्वर देती है और प्रयोजनीय हिन्दी उसको क्रिया व्यापार, संचार, ज्ञान-विज्ञान, विधि, वाणिज्य और प्रशासन का खुला मंच। प्रयोजनीय हिन्दी प्रशासनिक, व्यावसायिक, व्यापारिक, वैज्ञानिक और प्राविधिक संदर्भों की वाहिका है अर्थात् प्रयोजनीय हिन्दी 'हिन्दी भाषा' की एक ईकाई है जो प्रशासन, व्यवसाय, विधि-विज्ञान, संचार और बाज़ार के व्यवहारों, क्रिया-कलापों, वैचारिक आदान-प्रदान को सफलतापूर्वक संचालित करती है। आज ज्ञान-विज्ञान, प्रौद्योगिकी जैसे नए क्षेत्रों में हिन्दी भाषा के बढ़ते प्रयोग ने प्रयुक्ति की संकल्पना का विकास किया है। प्रयुक्ति से ही हिन्दी भाषा का प्रयोजनीय स्वरूप उभरता है। प्रयोजनपरक भाषा का अपना समाज होता है और उस समाज के क्रिया, व्यापार तथा प्रयुक्ति प्रयोगों के अनुरूप भाषा पद्धति का रूप प्रकट होता है। यथा-बैंक, बीमा, सब्जी-मण्डी, मज़दूर-मण्डी, दलाल-स्ट्रीट, सरकारी कार्यालय और वहाँ काम करने वाले स्त्री-पुरुषों की भाषा विविधता 'प्रयोजनमूलक हिन्दी' की सम्पन्नता का बोध कराती है। विवेचित भाषा में प्रयुक्ति का आधार भाषा के प्रयोग की विशेषताओं के आधार पर निर्धारित, रूढ़ तथा भाषा के भीतर ही विशिष्ट भाषा रूप होता है। हिन्दी भाषा में प्रयुक्ति का स्वरूप क्षेत्र विशेष की शब्दावली और शब्दों के अर्थ के आधार पर निर्धारित होता है। जैसे-विज्ञान के क्षेत्र में- ऑक्सीजन, हाइड्रोजन, कॉर्बन, इलेक्ट्रीक फ्लक्स, मैगेनेटिक आदि। जनसंचार के क्षेत्र में- मीडिया, मल्टीमीडिया, ग्लेमर, माड्यूलर, कम्पाइलर, इंटरनेट, बेव आदि। व्यापार वाणिज्य के क्षेत्र में- प्रॉडक्ट, कंज्यूमर, बिजनेस कार्ड, लक्स, कोकाकोला, क्वालिटी, रेंज आदि। शब्दों के अर्थ की दृष्टि से जैसे : पद का अर्थ कविता में 'छन्द', सामान्य अर्थ में' 'पैर', सरकारी कार्यालय में- 'अधिकारी का ओहदा।' 'बर्थ' का अर्थ- 'जन्म', रेल परिवहन में- सोने के लिए आरक्षित स्थान, 'ड्राफ्ट'-बैंक में- धनराशि का आदेश पत्र और कार्यालय में-मसौदा, आलेखन, प्रारूपण आदि।

प्रयोजनीय हिन्दी भाषा के स्वरूप में उत्तरोतर विकास हो रहा है, क्योंकि आधुनिक औद्योगीकरण, वैश्वीकरण, वैज्ञानिक विकास और मनुष्य की बदलती जीवन पद्धतियों में हिन्दी भाषा की नई-नई प्रयुक्तियों ने जन्म लिया और पोषित-पालित होती रही। प्रयोजनीय हिन्दी वर्तमान सन्दर्भों में हमारी आवश्यकता बन गई है। वर्तमान परिदृश्य में अर्थ सत्तावादियों ने साहित्य, समाज, संस्कृति, आचार-विचार, ज्ञान-विज्ञान, विधि-संचार आदि सभी विषय क्षेत्रों को बाज़ार के दायरे में ला खड़ा किया है, जिसका सीधा सम्बन्ध 'भाषा' से भी है। उस मायने में हिन्दी भाषा की प्रयोजनीयता और अधिक बढ़ जाती है। वैश्विक बाज़ार के बढ़ते प्रभाव ने 'हिन्दी भाषा' को व्यावसायिकता की ओर धकेला है। उस धक्कापेल में हिन्दी को प्रशासन और बाज़ार की ज़रूरत के मुताबिक सरल बनाया गया, जिससे सामान्य पढ़ा-लिखा, अनपढ़ या अहिन्दी भाषी व्यक्ति भी अपनी आजीविका या कारोबार सम्बन्धी आवश्यक व्यवहार कर सके।

प्रयोजनमूलक हिन्दी के व्यापक विषय क्षेत्रों में कार्यालयी हिन्दी पर दृष्टि डालें तो हम पायेंगे कि सरकारी कामकाज में- कांइडली एन्क्लोज, सबमिटेड ऑफ ऑर्डर्स, डिसकस मी, चेक्ड एण्ड वेरीफाइड, एक्शन एजइट अबोव, पुट दा फॉइल, नोटिंग आदि जुमले हिन्दी की समानान्तर प्रयुक्तियाँ बन गई हैं।

भारत का न्यायिक कामकाज़ पहले फारसी में, तत्पश्चात् अंग्रेज़ी में होता रहा। आज़ाद भारत में उच्च-न्यायालय को छोड़कर सेशन एवं जिला न्यायालयों में हिन्दी की दखलअंदाज़ी बढ़ गई है। हिन्दी की पारिभाषिक शब्दावली की बैसाखी के सहारे विधि क्षेत्र में हिन्दी पर्यायों को संस्कृत तथा अरबी-फारसी शब्दों के आधार पर महत्त्व मिला। विधि क्षेत्र में प्रयोजनीय हिन्दी की सार्थकता यह है वह अभिधेयार्थ होने के कारण सीधा, सटीक अर्थ देती है, उसकी स्पष्टता और एकार्थकता विधि की भाषा के लिए आवश्यक है। न्याय की भाषा में संदर्भ विशेष के लिए निश्चित शब्द ही प्रयुक्त होता है, जो न्यायिक क्षेत्र की भाषा का आवश्यक अंग है। न्यायिक भाषा में शब्दों के पर्याय की कोई गुंजाइश नहीं है।

विज्ञान और तकनीकी क्षेत्र की दृष्टि से प्रयोजनपरक भाषा का अवलोकन करें तो हम यह मानते हैं कि भारत चिकित्सा, आयुर्विद्या, गणित, दर्शन आदि क्षेत्रों के चिंतन में अग्रणी रहा है। प्राचीन वैज्ञानिक लेखन संस्कृत में भी हुआ है और आज विज्ञान और तकनीक के क्षेत्र में पुन: हिन्दी का प्रचलन बढ़ा है। राष्ट्रीय-अन्तर्राष्ट्रीय विज्ञान क्षेत्र को हिन्दी की प्रयोजनीय शब्दावली ने समृद्ध किया है। यथा: कार्बन-डाई-ऑक्साइड, कैलोरी, पल्सरेट, ब्लड टेस्ट, सेटेलाइट, एसिड, मैटल, साल्ट, आइरन, कोल आदि अनेक पारिभाषिक शब्द देवनागरी लिपि में लिप्यान्तरित हो हिन्दी के साथ घुल-मिल गए हैं। समाज विज्ञान क्षेत्र में राष्ट्रवादी, साम्राज्यवादी, पूँजीवादी, मार्क्सवादी वर्ग संघर्ष, वर्ग शोषण, शोषित, उपनिवेशवाद, वैश्विकवाद आदि अनेक प्रयोजनात्मक पारिभाषिक शब्दों की संकल्पना हुई। ऐसे शब्दों का प्रयोग विशिष्ट अर्थों में होता है, इसके लिए यह आवश्यक नहीं कि ये विशिष्ट अर्थ अपने मूल शब्द के साथ सकारात्मक संगति रखें ही।

संचार माध्यमों की दृष्टि से प्रयोजनीय हिन्दी का आकलन किया जाए तो हम पाते हैं कि संचार के भी दो रूप 'मुद्रित माध्यम' और 'यांत्रिक माध्यम' हैं। मुद्रित माध्यम 'पत्र-पत्रिकाएँ' भाषा के लिखित रूप पर ज़ोर देते हैं और समाज के बुद्धिजीवियों, व्यवसायियों आदि के साथ किसान-मज़दूरों के भाषा-व्यवहार से चलता है, जबकि संचार के यांत्रिक माध्यम भाषा के 'मौखिक रूप' पर बल देते हैं। मौखिक रूप से कही गई बात अधिक संप्रेषणीय, प्रभावी और व्यावहारिक होती है। संचार माध्यमों की प्रयोजनपरक हिन्दी भाषा में प्रयुक्त शब्दावली जीवन के सभी क्षेत्रों में ग्रहण की गई शब्दावली के रूप में प्रचलित है। समाचार-पत्रों में आजकल सुविधानुसार भाषाई संक्षिप्तियाँ भी होने लगी हैं। जैसे-जद, राजग, संप्रग, भाजपा, सपा, बसपा, यूपीए, माकपा आदि। यांत्रिक माध्यमों की प्रयोजनपरक शब्दावली में इस प्रकार की संक्षिप्तियों से बचे रहने की गुंजाइश अधिक है।

विज्ञापन का बाज़ार से सीधा संबंध है, बाजार के नियामक 'उत्पादकों' और उनकी आँट में आने वाला उनका आधार– 'उपभोक्ता' दोनों ही विज्ञापन से सरोकार रखते हैं। वैसे विज्ञापन का माध्यम जनसंचार के साधन हैं पर इसका सीधा संबंध उत्पादक उपभोक्ता से है। विज्ञापन दृश्य, श्रव्य, मुद्रित तीनों रूप में प्रचलित है। तीनों ही रूपों में प्रयोजनीय हिन्दी भाषा की प्रयुक्तियों को प्रयुक्त करने की होड़-सी मची है। जैसे :– 'लक्स' का जबरदस्त फंडा, आयोडेक्स मलिए, हॉकिन्स लाइए, लाइफबॉय है जहाँ, तन्दरुस्ती है वहाँ आदि सैकड़ों जुमले विज्ञापन के चमत्कारिक प्रभाव से ग्राहकों को सम्मोहित, आकर्षित करते हैं। विज्ञापन के साथ-ही-साथ मोबाईल, सिनेमा, फैशन, मॉडलिंग, रंगमंच आदि अनेक ऐसे क्षेत्र हैं जहाँ, प्रयोजनीय हिन्दी का क्षेत्र व्यापक से व्यापकतर होता जा रहा है।

वैश्विक बाज़ार व्यवस्था में व्यापार का क्षेत्र अन्तर्राष्ट्रीय हो गया है, इस दृष्टि से हिन्दी भाषा ने बाज़ार में दखलदांजी बढ़ाई है। अब उत्पादकों ने समझ लिया है कि भारतीय बाज़ार की प्रतिस्पर्द्धा में टिके रहने के लिए प्रयोजनपरक हिन्दी में व्यापारिक संवाद करना, व्यापारिक व्यवहार करना, लेखाकरण, लेन–देन का लेखा–जोख़ा करना आवश्यक है। अत: उसकी–बिक्री बढ़ी, दालों में उछाल आया, लहसुन ने छलांग लगाई, चाँदी चमकी, जीरा औंधे मुँह गिरा, प्रीपेड उपभोक्ताओं के लिए खुशखबरी, वायदा कारोबार ने किया बर्बाद आदि जुमलों की प्रयुक्तियों को बढ़ावा दिया।

हिन्दी भाषा का यह रूप आज सर्वत्र अपनी जड़ें जमाने लगा है। हम यह मान सकते हैं कि प्रयोजनमूलक हिन्दी समृद्धि की ओर अग्रसर होती हुई अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर हिन्दी भाषा को नई पहचान, नई ऊँचाई दे रही है। अगर भाषा का यह प्रयोजन मूलक स्वरूप इसी तरह ऊँचाई की ओर बढ़ता रहा तो जनसंचार, विज्ञापन, बाज़ार, सिनेमा आदि क्षेत्रों पर भाषिक एकाधिकार कर लेगा। साथ ही विज्ञान, तकनीक विधि, वाणिज्य और प्रशासनिक क्षेत्रों में प्रयोजनीय हिन्दी का दायरा व्यापक से व्यापकतर होता जाएगा। इस तरह प्रयोजनपरक हिन्दी का भविष्य उज्जवल दिखाई पड़ता है।

ooo

**ई–286, रामेश्वर नगर बासनी**
**प्रथम चरण– जोधपुर (राज.)**
**342005**
**सम्प्रति :– मो. 094114295256**

# समकालीन डोगरी रंगमंच

❑ मोहन सिंह

समकालीन डोगरी रंगमंच की बात करने से पहले मैं यह स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि क्षेत्रिय रंगमंच सदैव क्षेत्र की भाषा से ही जुड़ा होता है और उसे उस क्षेत्र की भाषा के माध्यम से ही जाना-परखा जा सकता है। हम कभी बंगाल के रंगमंच की बात नहीं करते। बांगला रंगमंच की बात करते हैं। महाराष्ट्र के रंगमंच की बात नहीं करते। मराठी रंगमंच की बात करते हैं। बिहार या उत्तर प्रदेश के रंगमंच की बात नहीं करते हिन्दी रंगमंच की बात करते हैं। इसी प्रकार हमें जम्मू के रंगमंच की बात न कर डोगरी रंगमंच की बात ही करनी चाहिए। मेरी समझ में यही सार्थक भी है, तर्कसंगत भी और उचित भी। क्योंकि जम्मू शहर का अस्तित्व अपने-आप में कोई मायने नहीं रखता। जम्मू शहर का पूरा क्षेत्र विशाल डुग्गर-भूमि का एक अंश मात्र है जिसकी भाषा डोगरी है। तो जम्मू में होने वाले रंगमंच को पहली नज़र में डोगरी रंगमंच की पृष्ठभूमि में ही देखना चाहिए। हिन्दी हमारी राष्ट्रीय भाषा है और हिन्दी रंगमंच के विकास के लिए राष्ट्रीय सतह पर अनेकों योजनाएं चल रही हैं तो उन योजनाओं का प्रभाव डुग्गर में भी होगा। देश-भर में हर जगह है तो यहां भी होगा। परन्तु कहलाएगा तब भी यह अहिन्दी क्षेत्र ही। इसी प्रकार दूसरी भाषाओं को भी लिया जा सकता है। जागरूक लोग चाहें अल्पसंख्यक हों या बहुसंख्यक, उनके साथ कोई दिक्कत नहीं होती। जैसे बंगाली। परन्तु जो लोग जागरूक नहीं होते वह चाहे तादाद में कितने भी ज़्यादा क्यों न हों, सदैव दिक्कत बनी ही रहती है। उनको हर कोई अपने हिसाब से घुमाने का प्रयत्न करता है और वह घूम भी जाते हैं। क्योंकि उनका अपना कोई मत नहीं होता। थोंपे हुए मत को अपना मत मानकर चलने वालों में डोगरे प्रथम श्रेणी के यात्रियों में गिने जाने चाहिए, मैं ऐसा मानकर चलता हूँ। हो सकता है आपको ऐसा न लगे पर मुझे ऐसा ही लगता है। रोज़ी-रोटी के लिए आवागमन तथा पलायन का सिलसिला सदियों पुराना है। आज भी ऐसा लगातार चल रहा है। यहां के लोग बाहर दूसरे राज्यों में जाते हैं। कुछ वापिस अपनी जन्म भूमि लौट आते हैं कुछ नहीं भी आते। वहीं के होकर रह जाते हैं। विष्णों कान्त शास्त्री उन्हीं में से एक थे। जम्मू में विनायक मिश्र धर्मशाला उन्हीं के पुरखों की बनाई हुई है। बंगाल चले गये तो फिर डोगरे न रहे बंगाली हो गये। ऐसे ही डुग्गर में भी बहुत से लोग आए। अब भी आ रहे हैं। राज्य में स्थाई टिकने पर सख़्त कानून है। फिर भी टिके हुए हैं। यह उनकी होशियारी ही है कि सख़्त कानून को धत्ता दिखाकर वह यहां स्थायी तौर पर टिके हुए हैं पर यहां के होने को

तैयार नहीं। बाकी सब कुछ तो अपनाना चाहेंगे और अपना भी रहे हैं मगर भाषा नहीं अपनाएंगे। ठीक ही तो है। जब उनका काम इसके बिना चल जाता है तो फिर वे यह जान-बूझकर एक और झंझट में क्यों पड़ें। बस यहीं से शुरू होता है डोगरी का ह्रास। डोगरी रंगमंच की बात भी इसी ह्रास से संबंधित है। जम्मू-कश्मीर कल्चर अकैडमी द्वारा करवाए जा रहे वार्षिक नाट्य उत्सव में केवल एक नाटक डोगरी का होता है। बाकी सब अन्य भाषाओं के। चलिए इस बात को भी नज़रअन्दाज़ न किया जाए कि रंगमंच की कोई भाषा नहीं होती। इन सांकेतिक अर्थों को यदि ठोस अर्थों में लेना चाहेंगे तो सारा मामला गड़बड़ा जाएगा। भाषा तो होती ही है। हां, यह कह सकते हैं कि रंगमंच की अपनी अलग भाषा होती है जो आमजन को स्वीकार्य होती है और जटिलताओं के परे सरलता को समेटे हुए होती है। साहित्यिक कठिन भाषा रंगमंच के लिए उपयुक्त नहीं मानी जाती। मगर भाषा तो होती है। रत्न थियम के चक्रव्यूह में भी भाषा थी और बलबंत ठाकुर के 'घुमाई' में भी भाषा है। कम या ज़्यादा। यह बात मायने नहीं रखती। मायने यह बात रखती है कि उसमें भाषा है और उस भाषा का कोई नाम भी है। रंगमंच के नाम पर जो कुछ भी यहां हो रहा है उसकी सराहना किये बिना नहीं रहा जा सकता। रंगमंच की दृष्टि से जम्मू शहर में अच्छा नाटक हो रहा है पर क्या यह अच्छा नाटक जो यहां हो रहा है उसे राष्ट्रीय मंच पर भी किया जा सकता है। आप कहेंगे कि हां किया जा सकता है पर अवसर ही नहीं मिलता। यह बात शत-प्रतिशत सही है कि अवसर नहीं मिलता। पर क्या आपने कभी विचार किया कि अवसर क्यों नहीं मिलता। और यदि आपको अवसर मिले भी तो आप कदाचित यह नाटक लेकर जाना नहीं चाहेंगे जो आप यहां खेल रहे हैं। तब आप इस धरती की गंध की ओर लौटेंगे। इस क्षेत्र की विशेषता को ढूंढ़ेंगे। यानी डोगरी की ओर रुख करेंगे। क्योंकि आपको बड़े अखाड़े में जाना है तो क्षेत्रीय दाव के बिना वहां टिक ही नहीं पाएंगे। उस समय आपको डोगरी का सहारा अनिवार्य प्रतीत होगा। ऐसा ही होता है। ऐसा ही हो रहा है। समकालीन परिदृश्य में लास्ट सोल्यशन देश-भर में बड़े-बड़े पारंगत रंगकर्मी खेल रहे हैं तो क्या आप उसको कोई नई डायमैन्शन दे पा रहे हैं। यदि नहीं तो फिर उस प्रस्तुति को क्या कहा जाए या फिर उसका औचित्य ही क्या है? हां यदि क्षेत्रिय भाषा में होगी, डोगरी में होगी तो यकीनन उसे दूसरे या नये नज़रिये से ही देखा जाएगा। इसी संदर्भ में यदि बात करें तो हम पाएंगे कि डोगरी ने दूसरी भाषाओं के नाटकों को कुछ इस तरह से अपने भीतर समेट लिया है कि वह डोगरी के ही लगने लगे हैं। 'शुत्तरमुर्ग, जसवां ओढ़न, अंधा युग, मत्त विलास, मल्लिका' आदि ऐसे ही कुछ नाटक हैं जो डोगरी में आकर अनुवाद या रूपातंर न रह कर मौलिक डोगरी के से लगने लगे हैं। कारण है डोगरी का अपना खुला और अपने अन्दर समेट लेने का स्वभाव। इसकी भाषाई पकड़ तथा अनोखी रंगयुक्तियां। रत्न शर्मा जब नाटक कर रहे थे तो उन्होंने 'सरपंच' ही नहीं अपितु 'बलिदान' भी खेला। और तो और उन्होंने 'सिंहासन खाली है' तक को डोगरी में खेला तो उसे एक नया अन्दाज़ नई डायमैन्शन मिली। इस संदर्भ में कितने ही नाटकों का हवाला दिया जा सकता है। 'देव पुत्तर' तथा 'आधा सच' भी उनमें से एक हैं। इन हवालों से आप अन्दाज़ा लगाएंगे न कि यह सब तो अनूदित या फिर रूपातरण किये हुये नाटक हैं। मौलिक

चाहे लगते हों पर मौलिक तो नहीं हैं। इसका मतलब तो यही हुआ न कि जो कहा जाता है वह सच ही है कि डोगरी में नाटक हैं ही नहीं तो खेला क्या जाए ? चलिए आपकी बात यदि मान भी ली जाए तो फिर राष्ट्रीय सतह पर डोगरी के जो नाटक खेले गये वह तो अनूदित या रूपांतरित नहीं थे, मौलिक थे। वह कहां से आए। मतलब साफ़ है। आपको ज़रूरत थी तो 'बावा जित्तो' लिखवा लिया गया। आपको ज़रूरत थी तो 'देवयानी' भी लिखवाया गया। आपको ज़रूरत थी तो 'दिनवार' भी वजूद में आ गया। मतलब आपको ज़रूरत होती है तो डोगरी का नाटक कहीं-न-कहीं से निकल ही आता है। इसका मतलब यह हुआ कि समकालीन परिदृश्य में कुछ ऐसा वातावरण बनाने की ज़रूरत है कि आपको डोगरी के नाटक की ज़रूरत महसूस हो। यह काम केवल संगीत नाटक अकादमी या फिर जम्मू-कश्मीर कल्चर अकैडमी ही कर सकती है। परन्तु जम्मू कश्मीर कल्चर अकैडमी की सीमाएं तो दिन प्रति दिन सिमटती-सी प्रतीत हो रही हैं। यदि ऐसा नहीं हो रहा तो फिर क्या कारण है कि जिला स्तरीय नाट्य मेले जो वार्षिक तौर पर हुआ करते थे अब नहीं हो पा रहे। वास्तव में क्षेत्रीय रंगमंच उन्हीं मेलों की मार्फत विकसित हो रहा था। नागरी रंगमंच में तो विसंगतियां आ ही जाती हैं। ग्रामीण रंगमंच में भी विसंगतियां आती हैं मगर बहुत धीरे-धीरे। एक समय था 'सरपंच' को डुग्गर के गांव-गांव में खेला गया। कम-से-कम एक-सौ के करीब गाँवों में खेला गया। लोगों ने देखा, सराहा और बहुत देर तक याद रखा। फिर यह सिलसिला टूट गया। कवि रत्न जी राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय से स्नातक होकर लौटे थे। उन पर लोक रंगमंच का नहीं स्टांसलाव्सकीयन यथार्थवादी रंगमंच का प्रभाव था। अलकाजियन स्कूल के शिष्य थे। सो उन्होंने उसी धारा को स्थापित करते हुए यहां के रंगमंच को विकसित करने की कोशिश की और काफी हद तक सफल भी रहे। परन्तु क्षेत्रीय रंगमंच या लोक रंगमंच का विकास थम गया। या यूं कहें की उसकी अनदेखी होती चली गई। उन्हीं दिनों फ्रैंडस क्लब नाम की मंडली वजूद में आई। केवल डोगरी के नाटक खेलने का संकल्प लिए। उन्होंने भी अपने नाटकों को गांव-गांव खेलकर लोगों तक पहुँचाने की कोशिश की। अंततः निजी व्यस्तताओं तथा आर्थिक तंगियों ने उनका भी चेप्टर क्लोज़ कर दिया। तब रंगमंच के विकास के लिए सरकारी अनुदान नाम की कोई वस्तु नहीं हुआ करती थी। और आज जब उसकी चारों तरफ से बौछार हो रही है तो हम रंगमंच को विकसित करने के स्थान पर खुद को विकसित करने में जुटे हुए हैं। यह जानते हुए भी कि समाज में रंगमंच की भूमिका अति महत्त्वपूर्ण होती है और रंगकर्मी पर समाज को सही दिशा प्रदान करने का अति संवेदनशील दायित्व होता है। रंगकर्मी चाहे छोटा हो या बड़ा निज का न रह कर समाज का हो जाता है। परन्तु यहां तो उल्टा ही हो रहा है। समाज से हम अपेक्षा करते हैं कि वह हमें सर-आंखों पर बैठाए परन्तु हम समाज को देना कुछ नहीं चाहते। हम केवल खानापूर्ति के लिए बंद कमरों में नये-नये नाटक खेलते हैं और उसकी तस्वीरें समाचार-पत्रों में छपवा कर अपने दायित्व से सुर्खरू हो जाते हैं। हमारे नाटक को कितने लोगों ने देखा, कितने लोग उससे प्रभावित हुए, इसकी हमें कोई चिंता नहीं। हमें चिंता है तो केवल इतनी कि कहीं हमारी फाइल में कोई कमी न रह जाए और हम मिलने वाले अनुदान से हाथ न धो बैठें। अब ऐसी स्थिति में रंगमंच

का कैसा और किस प्रकार का विकास होगा इसका अन्दाज़ा अपने-आप लगाया जा सकता है। मैं बंद कमरों में नाटक खेलने को बुरा नहीं मानता। परिस्थितियां अनूकूल न हों तो कई बार ऐसा भी करना ही पड़ता है। मसलन जब हमारे पड़ोसी देश पाकिस्तान में मार्शल ला था वहां के नाटक करने वालों ने अपनी बात लोगों तक पहुंचाने का यह तरीका अपनाया। रंगकर्मी तयशुदा घर जाते यहां आस-पड़ोस के लोग भी जमा हो जाते। अपना नाटक करते और निकल लेते। ऐसे ही वह जगह बदल-बदल कर नाटक खेलते और लोगों को अपने अधिकारों के प्रति सचेत करते। उनकी तस्वीरें समाचार-पत्रों में नहीं छपती थीं। ऐसी स्थितियां कभी-न-कभी हर जगह बन ही जाती हैं जब लगने लगता है कि अधिकारों का हनन हो रहा है। ऐसी सूरत में भी हमारा रंगकर्मी हनन कर्ताओं की ओर प्रशंसात्मक दृष्टि से देख रहा होता है और कह रहा होता है कि वाह जवाब नहीं आपका। इसके वाबजूद हैरान करने वाली बात यह है कि रंगमंच विकास की ओर अग्रसर है। उसमें नये-नये प्रयोग हो रहे हैं। प्रतिभावान कलाकारों की संख्या भी बढ़ रही है। नाटक के आलेख को समझ कर खेलने वाले लोग रंगमंच को अपना योगदान दे रहे हैं। नयी-नयी रंगयुक्तियां तलाशने की कोशिश की जा रही है। एक नया मुहावरा अपना वजूद कायम करता दिखाई दे रहा है। यह सब कुछ समकालीन परिदृष्य में ही हो रहा है। इसी से नये समीकरण बनने की संभावनाएं जन्म लेंगी प्रतीत होता है। बेशक डोगरी का समकालीन रंगमंच बहुत अच्छी स्थिति में नहीं है। कारण कुछ भी रहे हों पर यह कारण कदाचित नहीं है कि उसमें अच्छे आलेखों का अभाव है। यह भी कारण नहीं है कि डोगरी के नाटक को देखने में लोगों की कोई खास दिलचस्पी नहीं है। और यह भी कारण नहीं है कि उसमें संभावनाओं की कमी है। वास्तव में देखा जाए तो संभावनाएं केवल डोगरी रंगमंच में ही हैं जिन्हें पहचानने और समझने की ज़रूरत है। डोगरी रंगमंच में कितनी कशिश है यह आप 'सरपंच, जसवां ओढ़न, अल्लड़ गोल्ली वीर सपाई, बावा जित्तो, देवयानी, अपनी डफली अपना राग, बावे, गरीबू दा छिल्ला' और ऐसे कितने ही अनगिनत नाटक हैं जिनकी मार्फत देख चुके हैं और अब भी देख रहे हैं। 'आले' जैसी एकल प्रस्तुति ने तो पड़ोसी देश पाकिस्तान में भी धूम मचाई। 'समे-ओ-समे' ने अपनी यादगारी छाप छोड़ी और नये आयाम दिये। 'अल्लड़ गोल्ली वीर सपाई' ने तीन दशकों बाद फिर से दर्शकों की भीड़ इकट्ठी कर सिद्ध कर दिया कि डोगरी रंगमंच में अपनापन है, कशिश है। वास्तव में हममें से जिन-जिन लोगों को राष्ट्रीय नाट्य समारोह में जाने का तथा नाट्य प्रस्तुतियां देखने का अवसर मिलता है वह अपने आपको भाग्यशाली समझते हैं और देखी हुई प्रस्तुति को मामूली हेर-फेर के साथ या ज्यूं-का-त्यूं प्रस्तुत कर प्रशंसा बटोरने में सफल हो जाते हैं। डोगरी के नाटक के साथ ऐसा हो नहीं सकता। डोगरी का नाटक खेलने के लिए हमें सब कुछ नये सिरे से सोचना होता है जो दुष्कर कार्य होता है। परन्तु हम भूल जाते हैं कि अंततः दुष्कर कार्य ही नई राहें तलाशने के लिए प्रेरित करते हैं। हमें गम्भीरता से इस बारे में सोचना होगा कि आखिरकार हम रंगमंच के क्षेत्र में क्यों हैं और हमारा दायित्व क्या है। बाज़ारीकरण के इस दौर में नाटक का भी बाज़ारीकरण होता जा रहा है। जब कि होना

यह चाहिए था कि नाटक की मार्फत आमजन को इस संवेदनहीन दौर के प्रति जागरूक किया ज़ाता। समकालीन परिदृश्य में देखा जाए तो इस समय रंगमंच का समग्र रूप डावांडोल स्थिति में है। उपन्यास और कहानियों के नाट्य रूपांतर कर रंगमंच की साख बनाए रखने की कोशिश की जा रही है। ऐतिहासिक नायकों की जीवनियों पर नाटक लिखे और खेले जा रहे हैं। वर्तमान दौर की विसंगतियों को भी नाटक का विषय बनाया जा रहा है मगर इतनी शिद्दत से नहीं। इसी परिदृश्य में यदि डोगरी की बात करें तो चाहे कम ही सही पर कहीं अधिक सटीक और अच्छा लिखा जा रहा है डोगरी में। 'पिंड कुन्नै जुआड़ेआ, बिसियर, महांबलिदान, इक लड़ाई होर, समें-ओ-समें, न्यां, समां कुसमां, बावा जित्तमल, मल्लिका दा खास सलाहकार, अ'जै दा सिकंदर, गरीबू दी लंगोटी, खेड्डा-खेड्डा च ते कठपुतली' आदि कितने ही नाटक डोगरी में समकालीन परिप्रेक्ष्य में लिखे जा रहे हैं जिनको खेलकर डोगरी रंगमंच को अधिक सार्थक और तर्कसंगत दिशा दी जा सकती है।

ooo

# तस्वीर

❑ अमिता मेहता

आज बैठे बैठे अचानक नजर इक तस्वीर पर पड़ी
उसे देखते ही मन में कुछ भाव उमड़े
एक ऐसी मासूमियत थी उसके चेहरे में
कि मन भावविह्ल हो उठा
सहसा इक थकान-सी उभरी उस चेहरे में
कि जैसे परिस्थितियों से लड़ी हो
ऐसी चुभन दिखी उसमें जैसे अपनों ने
ठुकराया हो
ऐसी सशक्तता दिखी उसमें जैसे जिंदगी
से लड़ी हो
ऐसे भाव दिखे उसमें जैसे हर स्थिति से समझौता किया हो उसने
समझौता किया हो उसने
सहर्ष इक झटका-सा लगा मुझे
कि जिस तस्वीर को देखकर मैंने
कविता लिखी वो तस्वीर तो मेरी
अपनी ही थी।

ooo

---

* *96/3 नानक नगर, जम्मू*

# कबीर : ढाई आखर प्रेम का

❑ राजेन्द्र परदेसी

प्रेम को लेकर बहुत कुछ लिखा गया है, सम्पूर्ण विश्व साहित्य में प्रेम तत्व की प्रधानता नज़र आती है, हिन्दी साहित्य में भी आदिकाल से लेकर आधुनिक काल तक प्रेम विद्यमान है, सच तो यह है कि प्रेम शाश्वत है, हां, उसकी अभिव्यक्ति के माध्यम ज़रूर बदलते रहते हैं, भक्तिकाल में इस प्रेम का माध्यम ईश्वर है, किन्तु प्रेम की अभिव्यंजना, प्रेम के स्वरूप को और अर्थवान बनाती है, सूरदास ने तो प्रेम को कुछ यूँ परिभाषित किया है :-

*प्रेम प्रेम ते होय प्रेम ते पारहि जइए,*
*प्रेम बंधयो संसार, प्रेम परमारथ पइए।*

सूर की तरह कबीर भी प्रेम को ही महत्त्व देते हैं, उनका सारा-का-सारा रहस्यवाद प्रेम से आप्लावित है, भले ही यह प्रेम ईश्वर को समर्पित है, उसका केन्द्र कोई एक मनुष्य नहीं है, किन्तु कबीर की प्रेम विषयक अवधारणा, उसकी परिभाषा इतनी सटीक है कि आज भी जब प्रेम पर बात की जाती है, तो कबीर के बिना वह बात अधूरी-अधूरी सी लगती है, कबीर रहस्यवाद के माध्यम से प्रेम को उसकी समग्रता में प्रस्तुत करते हैं, वे प्रेम को ज्ञान से ऊँचा स्थान देते हैं :

*पोथि पढ़ि-पढ़ि जग मुआ, पंडित भया न कोय,*
*ढाई आखर प्रेम का पढ़े सो पंडित होय,*

*प्रेम का स्वाद गूँगे के गुड़ के समान है, जिसे कहा* और समझा नहीं जा सकता सिर्फ अनुभव किया जाता है :-

*अकथ कहानी प्रेम की, कछू कही न जाय,*
*गूँगे केरी सर्करा, खाये अऊ मुसकाय,*

प्रेम को साधना बहुत आसान नहीं है, घुड़सवार की तरह प्रेमी को भी हर वक्त चैतन्य रहना होता है।

*कबीर घोड़ा प्रेम का, चेतन चढ़भव सार,*
*म्यान खड़ग गहिकाल, सिर भली मचाई रार,*

---

* *संपर्क :- बी-118, इन्दिरा नगर, लखनऊ - 226016, मो० 09415045584*

कबीर प्रेम पंथ की कठिनाई को भी नहीं भूलते वे चेताते हैं कि प्रेम कोई आसान काम नहीं है, जिसे हर कोई कर सके, प्रेम में प्राणों का मोह छोड़ने वाला ही सफल हो सकता है–

*कबीर यह घर प्रेम का, खाला का घर नाहि,*
*सीस उतारे हाथि धरि, सो पैठे घर माहि।*

गालिब भी तो कहते हैं, कि यह इश्क, नहीं आसाँ गालिब बस इतना समझ लीजिए, इक आग का दरिया है और डूब के जाना है, कबीर भी इसी बात को बार-बार कहते हैं मानो वे उन्हें बरजना चाह रहे हों, जो प्रेम को बहुत हल्के रूप में लेते हैं क्योंकि प्रेम का मार्ग अगम है, अगाध है, इस राह पर तो प्राणों का मोह छोड़ना ही पड़ता है, तब कहीं जाकर किसी-किसी को प्रेम रूपी फल मिलता है–

*कबीर निज घर प्रेम, मारग अगम अगाध,*
*सीस उतारि पग तल धरै तब निकटि प्रेम का स्वाद।*

प्रेम हर किसी के बस की बात नहीं है यह हर किसी को सुलभ भी नहीं है, क्योंकि यह न तो खेत में उत्पन्न होता है और न ही बाज़ार में बिकता है कि जो चाहे वही खरीद ले यह तो प्राणों का सौदा है, प्रेम अमीर-गरीब, राजा और रंक में कोई भेद नहीं करता–

*प्रेम न खेतौं निपजे, प्रेम न हाटि बिकाय,*
*राजा परजा जिस ह्यै, सिर दे सोई ले जाय।*

प्रेम का महत्त्व उसे निभाने में ही है, प्रेम करना कठिन है, उसका निर्वहण और भी कठिन है, प्रेम में एकनिष्ठता अनिवार्य शर्त है, कबीर भी प्रेम की एकनिष्ठता पर बल देते हैं, प्रेम में दो के अतिरिक्त किसी और की गुंजाइश ही नहीं है–

*नैना अंतर आव तू पलक झांपि तोहे लेंव,*
*न मैं देखूँ और कूं, न तुझ देखण देंव।*

प्रेमी हृदय को अपने प्रेम से बिछुड़ने का भय इस कदर रहता है कि वह अपने प्रिय को सबसे छिपाये रखना चाहता है, न ही उसे कोई देखेगा और न ही उसके छीने जाने की संभावना बनेगी, इसलिए कबीर प्रिय को आँखों के भीतर ही छिपा कर रखना चाहते हैं, प्रेम की एकनिष्ठता का अनिवार्यता पर कबीर ने जितना सटीक और स्पष्ट लिखा है शायद ही किसी ने लिखा हो वे उसी से प्रेम करना उचित मानते हैं जो निर्वाह कर सके, किसी और से प्रेम करना तो दोष है ही दूसरे किसी को देखने से भी दोष लगता है–

*कबीर तासू प्रीत करि, जो निरबाहे ओड़ि,*
*वनिता विविध न राचिए, देखत लागै षोंड़ि।*

कबीर का मानना है कि प्रेम केवल एक से ही सम्भव है।

जिस प्रकार एक ही मुख से दो तुरही एक साथ नहीं बजायी जा सकती हैं, उसी तरह एक साथ दो लोगों से प्रेम भी नहीं किया जा सकता–अगर किया जाता है तो उसका परिणाम क्या होता है देखिए–

*कबीर जे मन लागै एक सू तो निरबहया जाइ,*
*तूरा दुइ मुख बाजणा, न्याह तमाचे खाइ।*

प्रेम में एक के अतिरिक्त किसी और के लिए कोई गुंजाइश नहीं होती उसका कोई विकल्प ही नहीं होता।

*कबीर रेख सिन्दूर की, काजल दिया न जाइ,*
*नैन रमइया रमि रहा, दूजा कहाँ समाइ।*

जिस तरह सुहाग में सिन्दूर की जगह काजल नहीं लगाया जा सकता, उसी तरह प्रिय का स्थान किसी और को नहीं दिया जा सकता।

कबीर यह देख रहे थे कि कलियुग में प्रेम की पवित्रता, प्रेम की एकनिष्ठता घटती जा रही है किन्तु उसके दुष्परिणाम भी उनके समक्ष ये जो प्रेमी विश्वासघात करते हैं वे कभी सुख की नींद नहीं सो पाते इसके विपरीत जो केवल एक से प्रेम करते हैं वे सुख और निश्चिन्तता का जीवन जीते हैं–

*कबीर कलियुग आइ करि, किये बहुत से मीत,*
*जिन दिल बँधी एक सो, ते सुख सोवे नचिंत।*

कबीर का यह प्रेम परमात्मा के प्रति है। प्रेम चाहे मनुष्य के प्रति हो या परब्रह्म के प्रति उसकी प्रगाढ़ता एवं उसके स्वरूप में कोई अन्तर नहीं होता। प्रेम की तुलना भी तो ब्रह्म से की जाती है। कबीर ने प्रेम में सात्विकता को प्रधानता दी है। प्रेम मन की सहन अभिव्यक्ति है प्रेम की पवित्रता और सहजता ही उसे ईश्वर तुल्य बनाती है जो एक बार प्रेम का प्याला पी लेता है उसका खुमार कभी नही उतरता।

*हरि रस पीया जाणिए, जे कबहूँ न जाये खुमार,*
*मैमन्ता घूमता रहै, नाहि तन की सार।*

विरह और मिलन तो प्रेम के संगी हैं, मिलन-विरह के अनेक रंग कबीर में मिलते हैं, कबीर के प्रेम में वासना की गन्ध नहीं है, वरन उदात्त प्रेम की गूँज है, उनका प्रेम परब्रह्म से है किन्तु उसकी अभिव्यक्ति का धरातल लौकिक है, कबीर ने दाम्पत्य प्रेम को आधार बनाया

है, परब्रह्म को उन्होंने पति माना है और स्वयं को उनकी पत्नी, कबीर ने दाम्पत्य प्रेम के माध्यम से विरह और मिलन के अनेक चित्र उकेरे हैं कबीर मंगलाचार की बात कहते हैं–

*दुलहिन गावहु मंगलाचार मोरे घर आयो हो राजा राम भरतार।*
*तन रति करि मैं मन रति करिहुँ पंचतत्व बराती राम देव मोहिव्याहन आयो*

कबीर ने प्रेम मिलन में विवाह के पश्चात् मिलन में मन और हृदय की स्थिति का कितना सटीक वर्णन किया है–

*थरहर कंपे बाला जीउ न जानउ किया रिसी पीव,*
*रैन गई मति दिन की जात, भँवर भये बग बैठे आय।*

इस तरह का वर्णन जायसी भी करते हैं–

*अनचिन्ह पिऊ काँपै मन माँहा,*
*का मैं कल्ब-गल्ब जो बाँहा।*

किन्तु इन दोनों चित्रों में बहुत फर्क है जो ध्वनियात्मक संकेत कबीर में है, वह जायसी में नहीं हैं।

विवाह के बाद मिलन की घड़ी में प्रिया की खुशी छलक रही है–

*'अंक भरे भर भेतिया मन में नाहीं धीर'*

वह अपने भाग्य को सराहती है, प्रिय के आते ही उसका घर प्रकाशवान हो उठा है, वह अपने प्रियतम से मधुर-मिलन में लीन है यह वह अनिवार्यनीय आनन्द है जिसे अनुभव ही किया जा सकता है। कबीर ने प्रेम मिलन में भारतीय दाम्पत्य की स्पष्ट छाप है। प्रिया अपने प्रियतम को एक बार पा लेने के बाद वह उसे जाने नहीं देना चाहती।

*अब तोहि जान न देहूँ राम पियारे,*
*ज्यूँ भावे त्यूँ होउ हमारे।*

वह उन्हें अपने प्रेम में उलझाकर रोक लेना चाहती है। वह पांव में गिरकर विनती और ज़बरदस्ती करने को भी तैयार है–

*चरननि लागि करौं बरियाई,*
*प्रेम प्रीत चरित डरझाई।*

भारतीय दाम्पत्य में पत्नी छोटी होती है कबीर कहते हैं–

*हरि मोरा पीव मैं राम बहुरि,*
*राम बड़े मैं छुटक लहुरिया।*

प्रेम में विरह की अनिवार्यता भी सर्वविदित है बिना विरह के मिलन की सुखद अनुभूति भी अधूरी रहती है, कबीर ने बिरहणा हृदय की मार्मिक पीड़ा को जैसे आत्मसात कर लिया है, इसीलिए उनकी अभिव्यक्ति गहरी और विश्वसनीय है। विरह की राह बहुत कठिन है, उस कठिनाई को बिरहन पार करने में असमर्थ है, वह न तो प्रिय तक पहुँच सकती है और न ही उसे अपने पास बुला सकती है, बस अब तो विरह में तड़पना ही शेष है–

*आइ सकौं न तुझ पै, सकूँ न तुझ बुलाइ,*
*जियरा यौं हो लेहुगे, बिरह तपाइ तपाइ।*

विरह की अग्नि बहुत कष्ट देती है, उसी तरह जिस तरह गीली लकड़ी पूरी तरह जलती भी नहीं और बुझती भी नहीं, विरहनी चाहती है कि वह सूखी लकड़ी की तरह पूरी तरह जल जाये, ताकि इस पीड़ा से मुक्ति मिल सके–

*विरह की ओदी लाकरी सपचै और धुँधवाय,*
*दुखते तबहि बाँचि हौं जब सकल जारि जाय।*

अब तो यह पीड़ा चरम पर पहुँच गई है, प्रिय को राह तकते-तकते कब दिन रात में बदल जाता है, कब रात ढल जाती है पता ही नहीं चलता–

*कबीर देखत दिन गया, निस भी देखत जाइ,*
*विरहनि पीव पावे नहीं, जियरा तलपै भाइ।*

अब तो प्रिय की राह तकते-तकते न जाने कितने दिन बीत गये हैं, मन में बस एक ही आस है कि प्रिय से मिलना हो–

*बहुत दिनन की जोहती, राम तुम्हारी बाट,*
*जिव तरसै तुझ मिलन कूँ, मन नाही विसराम।*

अब तो दर्शन के बिना आराम नहीं मिलेगा इसलिए उसके मन की एक ही आस है, प्रिय के दर्शन की :–

*अँखड़या झाँई पड़ि पंथ निहरि निहारि,*
*जीभड़या छाला पड़या, राम पुकारि पुकारि।*

प्रिय की राह देखते-देखते अब तो आँखों में झांई पड़ गई है और जीभ में छाले–

*बिरह अगिन तन दिया जराई,*
*बिन दरसन क्यूँ हो होय सिराई।*

वह प्रार्थना करती है कि हे प्रिय मैंने तुम्हारे दर्शन के लिए आरती सजा रखी है मुझे शीघ्र दर्शन दीजिए अब तो बात मरण तक आ पहुँची है सो जीते जी मेरी कामना पूर्ण कीजिए मरने के बाद अगर दर्शन दोगे तो वह व्यर्थ हो जायेगा–

*विरहनि साजि आरती, दरसन दीजे राम,*
*मुये दरसन देहुगे, आवत कवने काम।*

अब तो व्याकुलता इतना बढ़ गई है कि वह आते-जाते पथिकों से भी पूछने लगी है कि उसके प्रिय कब आकर मिलेंगे।

*विरहनि उसी पंथ सिरि, पंथी बूझे धाइ,*
*एक सबद कह पीव का, कबरे मिलेंगे आइ।*

अब वह अपने आप को विरह में समाप्त कर देना चाहती है। या तो प्रिय दर्शन दें या फिर मौत दे दें क्योंकि हर समय की यह तकलीफ उससे सही नहीं जाती–

*या विरहनि को मीच दे या आपा दिख राय,*
*आठ पहर का दांझणा मोसो सहा न जाय।*

वह विरह की आग में अपने को जलाकर राख कर देना चाहती है और वह अब मानना नहीं चाहती कि प्रिय उस पर दया करके उसे बचा लें वह जलकर राख हो जाना चाहती है ताकि दुनिया उसके प्रेम की पराकाष्ठा को देख सके–

*यह तन जालौं, मसि करूँ, ज्यूँ धुआँ आइ सरग्नि,*
*मति वै राम दया करैं, बरसि बुझावे अग्नि।*

जायसी की नायिका भी अपना शरीर जला कर राख कर देना चाहती है। मगर वह उस राख को प्रिय के मार्ग में ही बिछाना चाहती है, कबीर की विरहनी का मान मरने के बाद के प्रेम का कायल नहीं है, वह तो जीते जी प्रेम चाहती है।

कबीर विरह को कोसते नहीं वे उसे शिरोधार्य करते हैं। विरह ही प्रेम का सार है, विरह की आग में तपकर ही प्रेम कथन बनता है। जिस हृदय ने विरह की आँच जागी ही नहीं, वह श्मशान के समान है।

*कबीर विरहा बुरहा जिनि कहौ, विरहा है सुलितान,*
*जिस घर विरह न संचरै, सो घर सदा मसाण।*

कबीर की सौन्दर्य चेतना भी बहुत गहन है, निर्गुण निराकार के उपासक होने के कारण उसके काव्य में सौन्दर्य प्रच्छन्न रूप में आया है, मगर वे उस काल में प्रचलित नारी सौन्दर्य के उपकरणों, श्रृंगार और गहनों का भी वर्णन करते हैं, उन्होंने कंगन, में खुली माला के साथ-साथ कागज़, सिन्दूर, दर्पण का भी उपयोग अपने काव्य में किया है।

कबीर के पहले यह सौन्दर्य बोध कालिदास में मिलता है और कबीर के बाद जयशंकर प्रसाद में, प्रसाद ने सौन्दर्य को चेतना का उज्जवल वरदान कहा है–

*उज्जवल वरदान चेतना का, सौन्दर्य जिसे सब कहते हैं,*
*जिसमें अनंत अभिलाषा के, सपने जगते रहते हैं।*

कबीर ने अपने प्रेम विरह के पदों में इन्हीं अभिलाषाओं का गूंथा है, यही सौन्दर्य चेतना उनके रहस्यवाद को और भाव प्रवण बनाती है, प्रेम माधुर्य, विरह-मिलन दाम्पत्य के धरातल पर उतर कर कबीर को एक अलग मुकाम दिलाते हैं।

ooo

## ग़ज़ल

❑ बलजीत सिंह रैना

मेरा ही छीन कर चेहरा, मुझे यूं भीड़ कर देना।
किसी को हक नहीं चेहरा किसी चेहरे पे धर देना।
मैं हूँ इक भीड़ का चेहरा, कभी इसका, कभी उसका,
मेरा चेहरा मुझे मिल जाए, कुछ ऐसा ही कर देना।
पुरानी है कहावत, भीड़ का चेहरा नहीं होता,
अरे ओ चेहरेवालो! भीड़ को चेहरा ही कर देना।
कभी शमशीर-सा चेहरा कोई सर मांग बैठे तो,
नहीं आसां किसी भी भीड से उठना व सर देना।
भला क्यों आस्मां होने को, यह चेहरा मचलता है?
खवाहिश के परिंदे में, कोई परवाज़ भर देना।
मुझे मालूम है तू ही मुसव्विर ज़िन्दगी का है,
अधूरा न रहे, चेहरे में हर इक नक्श भर देना।
करे चेहरे के टुकड़े भीड़ पत्थर फैंकने वाली,
दिखा देना इसे तू आईना, सब ज़ख्म भर देना।
उजाले की तमन्ना में ह 'रैना' बीत जाएगी,
दिखे सूरज का चेहरा तो दीया इक ओर धर देना।

ooo

---

** संपर्क :- कुंजवानी पैट्रोल पंप के पीछे, जम्मू 180010, मो. 9797657211*

# पाडर की दलित-भोट जनजाति और उसका लोक-जीवन

❑ सुभाष चन्द्र

भारत के जन्मू-कश्मीर राज्य के अन्तर्गत जिला किश्तवाड़ के उत्तरपूर्व में पर्वत श्रृंखलाओं, रमणीय एवं शस्य घाटियों में परिव्याप्त जो भूखण्ड है, उसे 'पाडर' नाम से अभिहित किया जाता है। यह भूभाग पश्चिमी हिमालय के केन्द्रीय भाग में स्थित है विश्वमान चित्र में इसकी स्थिति भूमध्य रेखा से साढ़े बत्तीस से सवा चौतीस अंश उत्तर से एवं प्रधान मध्याह्न रेखा से पचहत्तर अंश पूर्व से साढ़े छिहत्तर अंश पूर्व के बीच आंकी जा सकती है।

पच्चास किलोमीटर के लगभग लम्बे और तीस कि० मी० के करीब चौड़े इस भूखण्ड से पूर्व में हिमाचल प्रदेश का पांगी क्षेत्र, उत्तर में मढ़वा-ढच्चन, उत्तरपूर्व में उमा शिला तथा पद्म, पश्चिम में नागसेनी पडियारना, दक्षिण में भलेस और बुंजवा तथा दक्षिण पूर्व में चम्बा जनपद की चुराह तहसील है।

भौगोलिक दृष्टि से यह क्षेत्र किश्तवाड़ के लिदराड़ी नाला से लेकर हिमाचल की सीमा तक ऊँचे पर्वतों से घिरी चन्द्रभागा की संकरी घाटी के बीच पड़ता है। पूर्वोत्तर से आने वाला भोट नाला भी इसी भूखण्ड में प्रवाहमान है। इस प्रकार पाडर चन्द्रभागा और भोटनाला द्वारा निसृत संयुक्त घाटी का प्रदेश है। इसी क्षेत्र में भोट जनजाति शताब्दियों से बसी हुई है जिनके जीवन पर प्रकाश डालने की आवश्यकता है। तिब्बत वंशीय बौद्ध जो लामावाद में आस्था रखते हैं, इस भूखण्ड में 'भोट' नाम से अभिहित किए जाते हैं। पाडर क्षेत्र में 'भोट' जनजाति के अन्तर्गत परिगणित हैं। इन्हें सरकार की ओर से वे सभी सुविधाएं उपलब्ध हैं। जो जंस्कार और पांगी घाटी (हिमाचल प्रदेश) के लोगों को हैं।

पाडर में भोटों की भी दो शाखाएं हैं। जो भोट लहोल स्पिति से आए हैं वे मुख्य रूप से पटोग, वरनील, हडडू और कब्बन क्षेत्र में रहते हैं और कब्बन के गुम्पा के साथ जुड़े हैं। जो भोट जंसकार से आए हैं वे हालौती, हाण्गो, जिशैड़ी, गुलाबगढ़, लुसैंनी, डंगैल और सुम्चाम में आबाद हैं। पाडर के सभी भोट महायान शाखा से सम्बन्धित हैं और लामा धर्म के अन्तर्गत निङमा शाखा से जुड़े हैं।

---

** अस्सिटैंट प्रौफेसर गर्वनमैंट डिग्री कालेज लेह (लद्दाख)।*

**खानपान**–आर्थिक स्थिति भोट लोगों की ठीक नहीं होने के कारण अभी भी उनके खानपान में कोई विशेष सुधार नहीं आया है। इनके खानपान की व्यवस्था पाडर के अन्य लोगों से अलग है। भोट लोग भी दिन में तीन बार भोजन करते हैं। दोपहर के खाने को केन या शोड और रात्रि भोज की गोंगल कहते हैं। वे टोकुर-कड़वा और थूर्पी को बहुत पसन्द करते हैं। टोकुर कड़बू के आटे से बनता है। आटा उबाल कर इसे तैयार किया जाता है, यह पतला होता है और इसे पानी में मिलाकर पिया जाता है।

यहां पोल्टू भी बनाया जाता है। यह गेहूँ और चलाई का बनता है। मक्की कोदरा, ओगला और फाफरा से भी पोल्टू बनाये जाते हैं। उन्हें तेल में पकाया जाता है। सतु पाडर क्षेत्र का प्रिय खाद्य है। जौ के सतु नमकीन चाय और लस्सी के साथ खाये जाते हैं। यह लोग छंग भी बड़े चाव से पीते हैं। प्रत्येक पर्व त्योहार पर इस का प्रयोग होता है।

**आवासीय स्थिति**–पाडर क्षेत्र के भोट लोग पर्वतीय घाटियों अथवा नदियों या नालों के तटों में स्थित ढलवानों, समतल मैदानों या जल स्रोतों के आस-पास छोटी-छोटी बस्तियों में रहते हैं। इनके घर मिट्टी, पत्थर और लकड़ी के बने होते हैं जिनमें कइयों की छत्तें सपाट और कईयों की त्रिकोणात्मक होती हैं। कहीं-कहीं मकान दुमंजिले या तिमंजले भी दिखाई देते हैं।

मकान बनाते समय इस बात का ध्यान रखा जाता है कि उसमें अन्न भण्डारन के लिए गोदाम हो, अतिथियों के लिए ओबरी हो, पशुओं के लिए अलग से ग्वाहल (पशुओं के रहने का स्थान) और बकरियों के लिए ग्वाड़ी का प्रबन्ध हो। जो मकान दुमंज़िले या तिमंज़िले होते हैं उनकी छत्तें प्राय: दोनों ओर से तिरछी होती हैं और लोहे की चादरों से ढकी होती हैं। ऐसी छत्तों से लाभ यह होता है कि हिमपात के दिनों बर्फ छत्त पर नहीं जमती और शीघ्र ही नीचे फिसल जाती है। एक मन्ज़िल से दूसरी मन्ज़िल तक पहुँचने के लिए मकान के भीतरी भाग में एक सीढ़ी रखी जाती है जो प्राय: लकड़ी की होती है और बढ़ई शहतीर को कुरेद-कुरेद कर इसे इस ढंग का बनाता है कि एक समय में एक ही व्यक्ति ऊपर या नीचे आ या जा सके।

भोट लोगों के घर में जो उद्दान (रसोई घर) होते हैं वे शयन कक्ष के साथ ही बनाए जाते हैं। इसमें एक बड़ा सुराख इसलिए रखा जाता है ताकि धुआँ घर के बाहर निकलता रहे। एक बड़ा छिद्र छत्त पर भी रखा जाता है। वर्षा या हिमपात की स्थिति में अनाज इस छिद्र से कमरे के भीतर फैंक दिया जाता है और छिद्र को पत्थर या किसी शिला से इस ढंग से ढंपा जाता है कि वर्षा का पानी कक्ष के भीतर न घुसे। रसोई घर का जो चूल्हा होता है। वह दो या तीन मुख वाला होता है। चूल्हे में एक साथ दाल, सब्ज़ी चावल या रोटी पकाई जा सकती है। चूल्हे में ईंधन का प्रयोग होता है। रसोई घर में धुआँ इतना अधिक होता है कि उसके कारण मकान अन्दर से मटमैला दिखाई देता है।

घर के कक्षों में प्रकाशरन्ध्र रखे जाते हैं। स्थानीय भाषा में इसे तबारी कहते हैं। जिस मकान में जितनी तबारियां हों मकान अन्दर से उतना ही प्रकाशमय होगा, किन्तु सर्दियों में अत्याधिक ठण्ड होती है, अत, मकानों में तबारियां कम रखी जाती हैं जिसके कारण मकान के भीतरी कमरों में अंधेरा-सा बना रहता है।

भोट लोग मकान बनाने के लिए स्थानीय संसाधनों का ही उपयोग करते हैं। मकान के लिए लकड़ी खेतों से उपलब्ध हो जाती है। वृक्ष काट कर शहतीर बनाए जाते हैं जिन्हें स्थानीय भाषा में 'धाह्र' कहा जाता है। 'धाह्र' को सहारा देने के लिए जो स्ताम्भिकाएँ खड़ी की जाती हैं। उन्हें 'ऐश' कहते हैं। मकान की छत पहले भोजपत्रों से ढांपी जाती है और उसके बाद वृक्षों की टहनियों, पत्तों को बिछा कर उसके ऊपर मिट्टी डाली जाती है। इस से वर्षा का पानी कमरे के अन्दर नहीं टपकता क्योंकि भोजपत्र छत्त के पानी को रोकता है।

घरों में ताला लगाने की प्रथा नहीं है। किवाड़ बन्द करने के लिए लुहार लोहे की सुक्खी बनाता है जिसे किबाड़ के साथ जोड़ दिया जाता है। सुक्खी को छानी के साथ खोला जाता है। मकानों की दीवारों की लिपाई मिट्टी से की जाती है और उसके ऊपर मकोल फेरा जाता है।

घर में लकड़ी के गोदाम रखे जाते हैं जिन में अनाज भरा जाता है। अनाज को एक स्थान से दूसरे स्थान तक ले जाने के लिए बकरी की खाल का उपयोग भी किया जाता है। घर में कपड़े व्यवस्थित ढंग से रखने के लिए कोई व्यवस्था नहीं की जाती । इन मकानों में अलग से स्नानगृह नहीं होते। पुरुष और महिलाएँ घर के बाहर ही स्नान करते हैं।

**वेशभूषा**–पाडर के भोटों का पहनावा पाडर के लोगों से बहुत मिलता जुलता है फिर भी कई बातों में विभिन्नता भी है। इनका नमया (पाजामा) तंग होता है और कोनज़े (कमीज़) ढीली होती है। सिर पर ये तिच्छी (टोपी) पहनते हैं। इनके जूते कुछ अलग ढंग के होते हैं। जूतों को यह कपशा कहते हैं। जो भोट परिवार लाहुल स्पिति से आए हैं उनमें बलदार ऊँची टोपी, रिगोय (ऊनी कोट), लिगजिया (एक लम्बी ढीली फराक) थकया (भेड़, बकरी की खाल) तथा लम्बे चमड़े की बूट पहनने की परम्परा रही है। रेशमी या सूती तोचे आज भी पहनी जाती हैं। भोट महिलाएं एक विशेष लिबास जिसे 'जुबा' कहते हैं उसे पहनती हैं। यह ऊन का बना होता है। महिलाओं की वेशभूषा कुछ जटिल-सी भी है। इनकी कमीज़ बिना बटन की और लम्बी होती है। इसे 'हजूक' कहते हैं। तोचे (फ्राक), लिगचे (शाल) तथा किरा (कमरबन्द) इनका प्रिय परिधान है। प्राय बौद्ध स्त्रियाँ लिबास के प्रति बहुत सावधान रहती हैं।

भोट महिलाएँ आभूषण भी पहनती हैं। यह महिलाएँ चुरू बड़े चाव से पहनती हैं यह मूंग की माला होती है। वे जू-परोज़ा (पन्ना), जी (मणि) और मोती के बने आभूषण पसंद

करती हैं। इनके प्रिय आभूषण झुलनू, शमश, बुरकी शुव, अलोग, डुन्केतसा, ताटका, फन्स और किरकित्सी हैं। बच्चों के हाथ और पाँव के लिए फुल्लु बनवाये जाते हैं।

**पर्व-त्योहार**–पाडर के भोट अपने पर्व-त्योहारों को बड़े धूमधाम से मनाते हैं। पाडर में केवल बारह गाँवों में भोट रहते हैं, अत: यह त्योहार उन्हीं गाँवों तक सीमित हैं। लोसर प्राय: दिसम्बर महीने में मनाया जाता है। उस त्यौहार को नव वर्ष के उपलक्ष्य में मनाया जाता है। इस दिन भोट अपने घरों और लामा गुम्पाओं को सजाते हैं। वे अपने-अपने घरों में गृह देवता की मूर्तियों के आगे दीपक जलाते हैं और आटे की मूर्तियाँ बनाकर चढ़ाते हैं। लोंसर के दिन भोट प्रात: उठकर छत्त पर दारछोद चढ़ाते हैं और षड़ाक्षरी मंत्र का जाप करते हैं। लोसर के दिन गधे की आवाज़ सुनना शुभ मानी जाती है। चूहा तथा मेमना देखना भी शुभ समझा जाता है, किन्तु कुत्तों को देखना अशुभ है। लोसर के दिन गुम्पा में एक मेला-सा लग जाता है। लामा और कई अन्य लोग मेले में मुखौटे पहनकर नाचते हैं। लोग घरों में आटे का हिरण, घोड़ा, याक और मेमना बनाते हैं। प्रात: उठकर इन्हें देखना शुभ माना जाता है। रात्रि के समय ये लोग इकट्ठे मिलकर खाना खाते हैं और छंग पीते हैं। स्वजन बधाई देने आते हैं तो एक दूसरे के माथे पर टीका लगाते हैं। सूखे मेवे के हार भी भेंट किये जाते हैं। इस त्योहार के अन्तिम दिन कोई भी वस्तु घर के बाहर नहीं निकाली जाती।

लोसर के अतिरिक्त बुद्ध पूर्णिमा त्योहार प्राय: मई या जून में महात्मा बुद्ध के जन्म दिवस के उपलक्ष्य में भोट-बस्तियों में मनाया जाता है। लोग गुम्पाओं में जाते हैं और शाक्य मुनि की पूजा-अर्चना-आराधना में पूरा दिन व्यतीत करते हैं। घरों में पकवान भी बनता है। लामाओं को इस दिन दान दिया जाता है।

बुद्ध पूर्णिमा के बाद नयुने नामक त्योहार आता है। यह तीन दिवसीय त्योहार है। इसका आयोजन फाल्गुन मास में होता है। इस त्योहार पर भोट व्रत रखते हैं और मौन रहकर षड़ाक्षरी मन्त्र का जाप करते हैं। इन तीन दिनों में गुम्पाओं में भी मौनता छाई रहती है।

**भोट समाज की परम्पराएँ**–भोट समाज में भी जन्म, विवाह एवं मृत्यु संस्कार सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण हैं। सन्तानोत्पति के समय अथवा इस उपलक्ष्य में बाद में भी लोक गीतों का प्रचलन नहीं है। पुत्रोत्पति के कुछ समय बाद देवता की पालकी को घर लाने का रिवाज है। इस प्रथा को शू-कुद कहा जाता है। इस अवसर पर बकरों की बलि देकर प्रसन्नता मनाई जाती है और जो भोज दिया जाता है उस पर पर्याप्त धन खर्च किया जाता है। जन्म के बाद बच्चे और जननी को नहलाने की प्रथा भी है। इनमें भी सूतक मनाया जाता है। बच्चे का पिता परम्परानुसार अधिक दिनों तक अशुद्ध माना जाता है। घर की शुद्धि के लिए सातवें दिन घर में लामा को आंमत्रित किया जाता है जो मन्त्रों के द्वारा शुद्धि करता है। कई परिवार लिपाई और पानी छिड़क कर घर शुद्ध कर लेते हैं। विभिन्न पर्व-त्यौहारों के अवसर पर पुत्र-जन्म के उपलक्ष्य में देवता को बकरा भेंट करने की प्रथा भी है।

पुत्री के जन्म पर गाँव की लड़कियों द्वारा उसके पिता को पीटने का रिवाज भी रहा है। लामा शिशु की जन्म तिथि तथा ग्रहों को देखकर उसके सम्बन्ध में भविष्य वाणियाँ भी करता है। बच्चे के जन्म के एक मास के भीतर उसका परिवार गाँव वासियों को खाना और छंग परोसता है। इस अवसर पर बच्चे को उपहार भी भेंट किए जाते हैं।

बच्चे का नामकरण लामा स्वयं करता है अथवा वह मुख्य लामा से निर्देश लेने के लिए कहता है। प्रधान लामा बच्चे का नामकरण करते समय उसके नाम के साथ अपना उपनाम भी जोड़ते हैं, यथा दलाई लामा का तेनजुन जसो है। वे जिस बच्चे का भी नामकरण करेंगे उसके नाम के साथ तेनजुन अवश्य जोड़ेंगे, यथा-तेनजुन दुर्जे, तेनजुन अमचु आदि। लेह का प्रधान लामा बच्चे के नाम के साथ सोनम जोड़ते हैं, यथा-सोनम दुर्जे तथा सोनम अनचु आदि। लड़कियों के नाम के साथ भी उपनाम जुड़ता है, यथा, तेनजुन आमो तथा सोनम डुल्मा आदि।

**विवाह संस्कार**–पाडर का भोट समाज भी कई शाखाओं और प्रशाखाओं में विभाजित है। जो भोट परिवार जंस्कार और लेह के क्षेत्र से इस भू भाग में आ बसे हैं वे लद्दाखी परम्पराओं का और जो लाहुल-स्पिति तथा अन्य क्षेत्रों में आए हैं वे अपने-अपने क्षेत्रों में प्रचलित रीति-रिवाजों का अनुसरण करते हैं, अत: पाडर के भोट-समाज में भी विवाह संस्कार सम्बन्धित परम्पराओं में विभिन्नता है। आँचलिक परिवेश का भी इन रीति-रिवाजों पर प्रभाव पड़ा है, अत: जनमानस की मान्यताओं में बदलाव आया है।

पाडरी समाज की तरह भोट समाज में भी विवाह कई प्रकार के हैं, जिनके नाम आंचलिक बोलियों और भौगोलिक स्थिति के कारण भिन्न हैं किन्तु परम्पराएँ प्राय: एक जैसी हैं।

सामान्य प्रकार की विवाह को भोट समाज में 'जनेकङ' अथवा ज़नेटङ कहते हैं, दो व्यक्तियों द्वारा बारात के रूप में जाकर सम्पन्न होने वाले विवाह को न्योटङ मीरङ, प्रेम विवाह को दमचल शिश, राक्षस विवाह अथवा बलपूर्वक किया गया विवाह दारोश डबडब तथा पुनर्विवाह को हारी नाम दिया गया है। उपरोक्त विवाह प्रकार हिमालय क्षेत्र में किसी न किसी रूप में प्रचलित हैं केवल भाषा बोलियों के कारण इनके नामों में विभिन्नता है।

भोट समाज में श्रेष्ठ विवाह सामान्य विवाह को ही माना जाता है। इस प्रकार का विवाह एक त्योहार के रूप में आयोजित होता है और प्रत्येक दृष्टि से जीवन्त और रंग बिरंगा होता है। इस प्रकार के विवाह की प्रथा के अनुसार लड़के का पिता अपने पुत्र के लिए वधू की तलाश करता है। वह प्राय: एक साथ तीन लड़कियां ढूँढ़ता है और तीनों के नाम पर तीन फूल लाता है और गुम्पा में जाकर देवता से उनमें से किसी उपयुक्त लड़की का नाम पूछता है। मध्यस्थ भी उसके साथ होता है। उसे जिस लड़की की स्वीकृति मिलती है, लड़के का बाप मध्यस्थ को साथ लेकर लड़की के बाप के पास जाता है, वे अपने साथ छंग की कुछ बोतलें भी ले जाते हैं। रिश्ते की बात लड़के का बाप चलाता है। बात पक्की हो जाने पर छंग की बोतलों को मक्खन का टीका लगाकर खोला जाता है। दोनों परिवारों के लोग आनन्दोत्सव मनाते हैं।

विवाह के दिन वर पक्ष के लोग वधू के लिए माथे पर लगाया जाने वाला एक आभूषण भेजते हैं। प्राय: लड़की को विवाह की जानकारी नहीं दी जाती। उस दिन उसे अपने सम्बन्धियों के घर भेज दिया जाता है। सायंकाल को बारात आने से पहले उसे बुला लिया जाता है जब उसे यह सूचित किया जाता है कि आज उसका विवाह है तो वह रोने लगती है और उसके साथ उसकी सहेलियां भी रोती हैं। तत्पश्चात् लड़की को नहलाया जाता है और उसे नए कपड़े पहनाए जाते हैं। बाद में लड़की को उसकी माँ के पास बैठाया जाता है।

वर पक्ष के लोग अपने स्वजनों, सम्बन्धियों तथा गाँव के प्रतिष्ठित व्यक्तियों को बारात में सम्मिलित करते हैं। बाराती पारंपरिक वेशभूषा में होते हैं। भोट समाज में बाराती को न्या ओया या 'ञ ओपा' कहते हैं। बारात जब घर से प्रस्थान करती है तो बजन्तरी सबसे आगे-आगे चलते हैं। इस अवसर पर वे सुरना (एक प्रकार की वीणा) और दम्मन (ढोल) बजाते हैं। बाराती यदि सम्पन्न हों तो वे घोड़ों पर जाते हैं, अन्यथा घर सहित बारात पैदल चलती है। बारात के मार्ग में यदि कोई नाला या पुल आ जाए तो उसे पार करने से पहले बकरे या मेमने की बलि दी जाती है। कटे हुए पशु को पुल पर लहू की लकीर इस उद्देश्य से घसीटी जाती है कि भूत-प्रेत बलि स्वीकार कर लें और नाला के उस पार उनके साथ न जाएँ।

जब बारात गाँव के समीप पहुंचती है तो उसको गाँव के बाहर रोक लिया जाता है। गाँववासी मशालें जलाकर बारातियों के पास आते हैं और भूत-प्रेतों को उनसे दूर रखने के उद्देश्य से बकरे की बलि देते हैं। गाँववासी भूत भगाने के लिए पूरे गाँव में मशालें घूमाते हैं और सरसों जलाकर भूत भगाते हैं। बारात जब लड़की के घर के निकट पहुँचती है तो वहाँ लड़की के गाँव से जितनी भी लड़कियां ब्याही गई होती हैं, बारातियों को छंग पिलाती हैं, कई गाँवों या परिवारों में लड़की की माँ स्वयं 'न्याओयोओ' का स्वागत करती है। वह 'करछोल'' के ढक्कन पर मक्खन के टुकड़े लगा-लगाकर बारातियों को प्याला भर-भर कर छंग पिलाती है। मक्खन के टुकड़े इस अवसर पर शुभ और कल्याण के सूचक माने जाते हैं। मक्खन का टीका बारातियों के माथे पर लगाने की परम्परा भी है।

वधू का पिता बारात पहुँचने के बाद वर को सफेद पगड़ी पहनाता है। वह एक तलवार या कटार उसकी कमर में लगाता है। वह छंग का प्याला भी वर को सौंप देता है। भोट समाज में विवाह-संस्कार सम्पन्न कराने में मध्यस्थ की भूमिका बहुत ही महत्त्वपूर्ण होती है। सभी काम उसके निर्देशन पर होते हैं। वही लड़के और लड़की पक्ष के लोगों का मार्गदर्शन करता है।

बारातियों को रात्रि को जो भोजन परोसा जाता है उसमें सत्तु, चावल, रोटी और दो-तीन सब्जियाँ ही होती हैं। प्राय: बाराती रात भर दुल्हन के गाँव में ही ठहरते हैं। विवाह की रात्रि पर नृत्य-गायन का कार्यक्रम भी चलता है। इस नृत्य में वर और बाराती भाग लेते हैं। महिलाओं द्वारा विवाह गीत गाने की परम्परा भी है। बारात की विदाई अगले दिन होती है। मध्यस्थ लड़की की माता के पाँव पर भेंट रखने के बाद लड़की का हाथ पकड़कर उसे घर

के दरवाज़े से बाहर निकालता है और उसे बाहर ले आता है। सम्बन्धी भी लड़की के पीछे-पीछे बाहर आ जाते हैं। बारात की विदाई के समय दुल्हन का पिता बारात की विदाई से पहले लड़की को दहेज में कुछ बर्तन, कृषि के उपकरण और कुछ पालतू पशु देता है। लड़की को विदाई देते समय गाँव की महिलाएँ वर-वधू की मंगल-कामना में विदाई का गीत गाती हैं। दुल्हन को लेकर बारात वर के गाँव लौट आती है।

दुल्हन के घर पहुँचने के बाद वर और वधु को एक स्थान पर बैठाया जाता है। वर के सभी भाइयों को भी एक ही पंक्ति में क्रमानुसार बैठाया जाता है। सभी भाइयों के सिरों में पगड़ी बाँधी जाती है। भोट समाज में सेहरा बाँधने की प्रथा नहीं है। अतः पगड़ी ही सेहरा का प्रतीक मानी जाती है। यह पगड़ी वरों को मामा द्वारा प्रदान की जाती है। पगड़ी बांधने से यह अभिप्राय लिया जाता है कि दुल्हन के साथ सभी भाइयों का विवाह सम्मिलित रूप से हुआ है। दुल्हन के साथ दुल्हन की सहेलियाँ और उसके गाँव के लोग भी उसके साथ दूल्हे के घर बारात रूप में आते हैं। इसे दुल्हन की बारात कहा जाता है। स्वजनों, गाँववासियों तथा दुल्हन के बारातियों को एक भव्य भोज दिया जाता है। उसी दिन नृत्य और गायन भी होता है। इसमें दुल्हन और दूल्हा-पक्ष के लोग सम्मिलित होते हैं।

इस विवाह में एक विशेषता यह भी है कि विवाह के समय वर-वधू के सामने एक थाली में फूल रखे जाते हैं। स्वजन उसमें रुपये, कपड़े तथा अनेक वस्तुएँ वर-वधू को भेंट करते हैं। तीसरे दिन दुल्हन के बाराती अपने-अपने घरों में जाने की तैयारी करते हैं। दुल्हन भी उनके साथ कुछ दूरी तक रोती हुई जाती है। इस अवसर पर एक गीत भी गाया जाता है और माजोमी (मध्यस्थ) से मिलकर चले जाते हैं। भोट समाज में लड़की की विदाई पर शोक धुन बजाने की परम्परा भी थी जिसका अर्थ शायद यह था कि मायके वालों के लिए लड़की अब मर गई है।

सामान्य प्रकार का यह विवाह बहुत ही खर्चीला होता है। अतः भोट परिवार में इस खर्च से बचने के लिए कुछ सरल और कम खर्च की परम्पराएं भी हैं।

जिन परिवारों की आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं होती, वह छोटा विवाह करते हैं। इस विवाह में भी देवता, वधू-पक्ष के सम्बन्धियों, माता आदि की स्वीकृति ज़रूरी है। भोट इसे न्योटङ मीरङ कहते हैं। इस विवाह में भी माजोमी (मध्यस्थ) की भूमिका महत्त्वपूर्ण रहती है। विवाह में सभी सम्बन्धियों को नहीं बुलाया जाता। दूल्हे का बारात में जाना भी ज़रूरी नहीं। मध्यस्थ दूल्हा-पक्ष के एक व्यक्ति को दुल्हन के घर ले जाता है और दुल्हन को वर के घर ले आता है। वधू को आशीर्वाद देने के लिए शू-कुद की प्रथा को निभाया जाता है। इस प्रथा के अन्तर्गत सभी भाइयों को पगड़ी बांध कर उनका सम्मिलित विवाह किया जाता है। निर्धन लोगों के लिए यही विवाह उपयोगी है। कई बार ऐसा भी होता है कि छोटा विवाह के बाद आर्थिक

---

*1. करछोल-बर्तन विशेष का नाम।*

दशा सुधरने पर बड़ा विवाह भी किया जाता है। इस प्रथा के अन्तर्गत वर द्वारा सास के पाँव में भेंट चढ़ाना ज़रूरी माना जाता है।

छोटा विवाह के अतिरिक्त प्रेम-विवाह की भी परम्परा है, इसे भाग्यमिग विवाह भी कहते हैं। इस प्रथा के अन्तर्गत प्रेमी-प्रेमिका को लेकर भाग जाता है। कुछ अन्तराल के बाद जब लड़का अपनी प्रेमिका के साथ घर लौटता है तो लड़के का बाप मध्यस्थ को लड़की के बाप के पास भेजता है। वह लड़की के बाप के लिए छंग की बोतलें ले जाता है और इज़्ज़त की भेंट चढ़ाकर सम्बन्ध पक्का कर लेता है। इज़्ज़त में लड़की के मामा का भाग भी रहता है। समाज-शास्त्रियों का मत है कि यह विवाह-प्रथा प्राचीन परम्पराओं में से एक है। हरण-प्रथा भी इसी का एक रूप है।

प्रेम-विवाह के अतिरिक्त राक्षस-विवाह (दारोश-डबडब) की भी प्रथा है। समाजशास्त्री इस प्रकार के विवाह को आदिम जातीय प्रथा मानते है। इस में लड़की की इच्छा का ध्यान नहीं रखा जाता है। लड़का स्वयं या अपने मित्रों की सहायता से लड़की का अपहरण करके उसे घर ले आता है। लड़के के गाँव की लड़कियाँ लड़की की खूब सेवा करती हैं और उसे समझाती हैं कि वह उस लड़के के साथ विवाह कर ले जिसने उसका अपहरण किया है। यदि लड़की मान जाए तो विवाह हो जाता है और यदि न माने तो उसे अपने माँ-बाप के पास जाने दिया जाता है। भोट समाज में विवाह सम्बन्धी प्रथाओं में तिब्बती प्रभाव भी देखा जा सकता है। तिब्बत की भांति पाडर के भोट विवाह में प्रश्नोत्तरी भी चलती है जिसे 'डोगल गोनपा' कहते हैं। इस प्रथा के अनुसार वधू-पक्ष का लामा वर-पक्ष के लामा या बाराती को प्रश्न करता है। लामा या बाराती उसका सन्तोषजनक उत्तर देता है। जनश्रुति है कि तिब्बत का राजा स्तोड़ सेन चीन की राजकुमारी से विवाह करने जब चीन गया तो चीन के पंडितों ने तिब्बत के बारातियों से जब ऐसे प्रश्न किए तो उसके उत्तर 'डोगला गोन्पा' ने दिए। बाद में विवाह उत्सव पर प्रश्नोत्तरी की प्रथा तिब्बत में भी प्रचलित हुई और वहाँ से यह लाहुल, स्पिति, लद्दाख और पाडर में भी चली। पाडर में जब बारात चलती है तो उसमें एक ऐसे योग्य व्यक्ति को भी शामिल किया जाता है जो वधू-पक्ष के लामा के प्रश्नों का उत्तर सही-सही दे। इस अवसर पर जो प्रश्न पूछे जाते हैं। उसका एक रूप इस प्रकार है :

**प्रश्न :** गुग्गुल गी दुत्या शरदू सोङ बादे चीई दोन लव (पूर्व दिशा की ओर गुग्गल की गंध देने का क्या अर्थ है)

**उत्तर :** शर छोक ढीज़ा टुलवई छीर (भूत्त-प्रेत के प्रभाव को दूर करने के लिए)

पाडर में कभी यह प्रथा भी थी कि बहु के घर के सामने पत्थर की तीन ढेरियाँ लगाई जाती थीं। सही उत्तर मिलने पर लामा एक-एक कर के ढेरी गिरा देता और इसके बाद बारात को दुल्हन के घर में प्रवेश करने दिया जाता।

इस क्षेत्र में एक प्रथा और भी थी। कई लड़कियों को एक पंक्ति में बैठाया जाता और

दूल्हे को बुलाया जाता। दूल्हा के हाथ में तीर कमान होता है। वह जिस लड़की की गोद में तीर फेंकता है उसके साथ उसे विवाह करना पड़ता है। प्राय: दूल्हा उसी लड़की की गोद में तीर फैंकता है जिससे उसका विवाह निश्चित हुआ होता।

भोट समाज में विवाह के अवसर पर अश्लील गालियाँ निकालना वर्जित नहीं। लोक विश्वास है कि बारातियों के साथ जो योगनियां अपने सम्बन्धियों के साथ आती हैं वे अश्लील गालियाँ सुनकर भाग जाती हैं। इस समाज में तलाक की प्रथा भी है। जब पति-पत्नी में सम्बन्ध विच्छेद हो जाता है तो वे बिरादरी के सामने सूखी लकड़ी तोड़कर सम्बन्ध तोड़ देते हैं।

भोट समाज में मृत्यु सम्बन्धी प्रथाएँ अद्‌भुत और आश्चर्यजनक हैं। तिब्बती प्रथाओं का ये प्रतिरूप हैं। परिवार में जब कोई व्यक्ति मर जाता है तो सबसे पहले लामा को बुलाया जाता है। वह मृतक को शिखा से पकड़कर तीन बार 'फोआ' कहता है। लोक विश्वास है कि ऐसा करने से मृतक को मोक्ष की प्राप्ति होती है। लामा के आदेश पर मृतक को एक बड़े तख्ते पर, टांगें घुटनों के पीछे करके, चार खूँटों के सहारे बैठाया जाता है। लोक-विश्वास है कि यदि ऐसा न किया जाए तो मृतक का भूत उसके शरीर में प्रवेश कर सकता है। मृतक का संस्कार करके स्वजन घरों में लौट आते हैं और घर में 45 दिन तक शोक मनाया जाता है। मृतक के बड़े लड़के को इन दिनों में पूजा-पाठ करना पड़ता है। 45वें दिन एक बड़े भोज का आयोजन किया जाता है जिस में गाँव के सभी लोगों को आमंत्रित किया जाता है। ऐसे भोज में छंग का प्रयोग भी किया जाता है।

भोट समाज में मृत्यु से सम्बन्धित कई प्रथाएं और विश्वास और भी हैं, यथा मृतक को श्मशानघाट ले जाने के कुछ समय बाद दाल और रोटी को छत के ऊपर फैंका जाता है। ऐसा विश्वास है कि रोटी कौवे के द्वारा मृत व्यक्ति को प्राप्त होती है। मृतक के सम्बन्धी पुतकों के नाम पर चबूतरे इत्यादि बनाते हैं। समझा जाता है कि इससे मृतक की आत्मा प्रसन्न होती है। मृतक का दाह संस्कार करने के बाद सायं को भुने हुए जौ के आटे में घी मिलाया जाता है और बाद में उसे आग के अंगारें में रखते हैं जिससे धुआँ उठता है। विश्वास है कि यह धुआँ मृतक की आत्मा तक भोजन पहुँचाता है।

लामा मृतक व्यक्ति के घर धर्म पोथी पढ़ने के बाद मृतक व्यक्ति का नाम एक कागज़ पर लिखकर सब के सामने जला देता है। इसका अर्थ यह लिया जाता है कि मृतक का अब अपने स्वजनों से कोई सम्बन्ध नहीं। लामा क्रिया कर्म द्वारा घर की शुद्धि भी करता है और कई अनुष्ठान इस उद्देश्य से करता है कि मृतक को शांति मिले।

मृतक के संस्कार के बाद कहीं-कहीं लामा अपने ज्योतिष से यह हिसाब लगाता है कि मृतक का अगला जन्म कहाँ होगा। यदि लामा को यह पता चल जाए कि अगला जन्म किसी

निम्न योनी में होगा तो वह घर वालों से पूजा-पाठ और दान-पुण्य करवाता है। मृतक के नाम पर पर्व त्योहारों पर पोल्टू बाँटने का रिवाज भी है। मृतक के नाम पर उसकी पसंद की वस्तुएँ बजन्तरियाँ में बाँटने की प्रथा रही है। कई स्थानों में मृतक के शरीर को एक सन्दूक में बैठाकर जलाया जाता है। मृतक का दाह संस्कार करने से पहले लामा मन्त्रोच्चारण करता है और स्वजन अन्त्येष्टि के तीन चक्कर लगाते हैं। दाह संस्कार के दूसरे दिन ब्रह्म-मुहूर्त्त में मृतक के फूल चुनने का रिवाज भोट समाज में भी है। लामा गरूड़ पुराण की भाँति मृतक के घर कुछ मन्त्र पढ़ता है और परिवार जनों को सुनाता है कि आत्मा कहाँ-कहाँ जाएगी।

लामा दाह-संस्कार के समय जो मंत्र पढ़ता है वे तिब्बती भाषा में होते हैं। इन मंत्रों में अग्नि-देवता की स्तुति होती है। कुछ मंत्र ऐसे भी होते हैं जिसमें यह बताया जाता है कि स्तुति करने से मृत प्राणी को क्या फल मिलता है। कहीं-कहीं मृतक के घर शोकगीत भी गाए जाते हैं।

ooo

# सच कहता हूँ देखा मम्मा

❑ चंचल डोगरा

रात चाँद खिड़की से आया,
था गाँव में पेड़ पर अटका;
सुबह सवेरे देखा मम्मा-
टिमटिम करते तारे सारे
फूल बने थे प्यारे-प्यारे।
पैंज़ी थी नाक पे बैठी तितली,
लाल गुलाब को छेड़ रही थी ;
पीला गेंदा हँसता जाता,
बुलबुल भी था शोर मचाता ;
सच कहता हूँ देखा मम्मा।
सुबह सवेरे देखा मम्मा।

ooo

* *'देवमंजर', 26-आई, ब्लॉक 'ए', तवी-बिहार, सिदड़ा, जम्मू-180017*

# नारी जीवन का दस्तावेज़ : 'हैमबरगर'

❑ सविता कुमारी

कमल कुमार ने अपार्थ (1986), आवर्तन (1992), हैमबरगर (1996) यह खबर नहीं (2002), मैं घूमर नाचूँ हूँ (2009), और पासवर्ड (2009) उपन्यास लिखकर हिन्दी उपन्यास जगत में अपना विशेष स्थान बनाया है। डॉ. कमल कुमार नारीवादी लेखिका हैं। नारी जीवन के विविध पहलुओं का चित्रण उन्होंने अपने उपन्यासों में किया है। इनका 'हैमबरगर' उपन्यास नारी जीवन के संघर्ष की गाथा को दो भिन्न संस्कृतियों के द्वन्द्व से उभारता है। लेखिका अपनी परम्परा, संस्कृति, मर्यादा और संस्कार की लुप्त होती विरासत के प्रति बेहद चिंतित हैं। उनकी चिन्ता उनके अन्य उपन्यासों में भी देखी जा सकती है किन्तु प्रस्तुत उपन्यास में उन्होंने अपनी चिन्ता को एक नया आयाम दिया है।

सुदूर बैठा हुआ भारतीय व्यक्ति जिस दृष्टि से पश्चिम की ओर देखता है और अवश्य ही एक बार उनकी जीवन-शैली की दाद भी देता है। वास्तव में पश्चिम वैसा नहीं है। लेखिका इस उपन्यास में हमें पश्चिम के असली रूप से परिचित करवाती है। 'हैमबरगर' नाम ही पाश्चात्य संस्कृति का प्रतीक है जो अमेरिकी भोगप्रधान संस्कृति का परिचायक है। 'हैमबरगर' के बहाने लेखिका ने उपभोक्तावाद के खोखलेपन की पोल खोली है। उपन्यास की कथा आरम्भ से लेकर अन्त तक नारी के इर्द-गिर्द घूमती है। कभी वह भारतीय नारी तो कभी पाश्चात्य नारी के जीवन की त्रासदी से पाठकों को रू-ब-रू करवाती हैं।

उपन्यास पंजाब की एक ग्रामीण लड़की के दैहिक शोषण से आरम्भ होकर पश्चिम की अपने ही रिश्तों द्वारा शोषित और रंग-भेद की नीति का शिकार बनी जिंसी और नोमजा की दर्द-भरी कहानी कहता है। रतीन्द्र का मंगेतर उसे अपनी बहन से मिलवाने के बहाने से ले जाकर उसका बलात्कार करता है। वह गिड़गिड़ाती है "मुझे धोखा देकर लाए हो आप। शादी से पहले इस तरह मेरी इज़्ज़त मत खराब करो।"[1] वह शादी से पहले शारीरिक सम्बन्धों का विरोध करती है जबकि कुलवीन्द्र अपनी मंगेतर के रूप में रतीन्द्र की देह को देख रहा है। उसके लिए इस बात का कोई मतलब नहीं कि वह अविवाहित है या विवाहित। यह पुरुष जाति की नियति ही रही है कि वह स्त्री को उपभोग का साधन समझता है। उस पर भी आज पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाव के चलते विवाह पूर्व दैहिक सम्बन्धों के लिए कोई आदर्श नहीं रह गया है। पश्चिम की तुलना में अपने आप को पिछड़े हुए होने की बात करता हुआ कुलवीन्द्र रतीन्द्र पर हर तरह से प्रभाव डालने का प्रयास करता है-"जब मुझे फर्क नहीं पड़ता तो तुझे क्या है ? शादी तो तेरी मेरे साथ ही होनी है न। अब ज़माना बदल गया है। बाहर

---

** शोध छात्रा, हिन्दी विभाग, जम्मू विश्वविद्यालय, जम्मू, मो. नं. 9697264217*

के देशों में तो बिना शादी के ही सब चलता है। हमीं पिछड़े हुए हैं।''[2] विवाह पूर्व यौन सम्बन्धों को युवा पीढ़ी सभ्य आचरण में परिगणित करती है जबकि यह मात्र उनकी हवस है। पश्चिम इसके दुष्परिणाम भोग रहा है और भारतीय भी अनैतिक यौन-सम्बन्धों को उचित ठहराने में कहीं पीछे नहीं रहे हैं परिणाम स्त्री को भोगना है। पुरुष के लिए अपनी हवस की पूर्ति के पश्चात् स्त्री केवल वस्तु मात्र रह जाती है। पुरुष भले ही मंगेतर हो, प्रेमी हो या कोई अन्य हो स्त्री को धोखा देता आया है। उपन्यास में कुलवीन्द्र एक तरफ रतीन्द्र की अस्मिता लूटता है तो दूसरी तरफ बदनामी का भय भी उसे दिखाता है ''इस वक्त तुम मेरे दोस्त के घर में हो। अपने पैरों चलकर आई हो। चीखो मत मुहल्ले भर में बात फैल जाएगी। बदनामी तुम्हारी होगी। फिर मुझे दोष मत देना। मेरी कोई जिम्मेवारी नहीं।''[3] सदियों से पुरुष स्त्री की संवेदनाओं को कुचलता आया है, दबाता आया है। यह भारतीय सामाजिक संरचना की ही देन है, जिसमें वह स्त्री पर सदैव दोषारोपण कर स्वयं निर्दोष बन जाता है। हमारी सामाजिक व्यवस्था ही ऐसी है जिसमें पुरुष चाहे कितना भी धोखेबाज, कमीना या घटिया क्यों न हो, उस पर दोष कभी नहीं आता, क्योंकि हमारा समाज पुरुष प्रधान है, पुरुष की प्रधानता के कारण सारे दोष स्त्री पर ही मड़ दिए जाते हैं। यही बात पुरुष के लिए हथियार साबित होती है और स्त्री गुनाहगार साबित कर दी जाती है।

पुरुष स्त्री देह का उपभोग करने के बाद भी साफ-पाक बना रहता है, यही चिन्ता का विषय है। उपन्यास की नायिका होने वाले पति की वासना का शिकार बनी है। वह उसे अपनी मजबूरी बताते हुए विवाह के लिए विवश करती है, लेकिन कुलवीन्द्र उसकी बात की ओर ध्यान नहीं देता बल्कि उसे ही दोषी करार देता है-''बकवास मत कर। तुझे जल्दी हो तो शादी कहीं और कर ले। मुझे करनी ही नहीं तेरे साथ शादी। ऐसी बेशर्म औरत के साथ।''[4] पुरुष स्त्री देह को विलास की समाग्री समझता है। जिस तरह से किसी वस्तु का प्रयोग करने के बाद उसे फैंक दिया जाता है। ठीक ऐसे ही उपन्यास में कुलवीन्द्र भी रतीन्द्र के गर्भवती हो जाने पर विवाह से इन्कार कर उसे समस्त परिवार जनों की भर्त्सना के लिए छोड़ देता है। यह भारतीय मानसिकता है कि पुरुष को दोष कभी नहीं दिया जाता, सारे दोष स्त्री पर ही मड़ दिए जाते हैं। ऐसे में रतीन्द्र के पास आत्महत्या के सिवा कोई उपाय नहीं रह जाता। उसकी चाची जो अमेरिका में रहती है उसे इस सदमें से न केवल उभारती है बल्कि उसे अपने साथ अमेरिका ले जाती है। चाची (गुरमीत) एक सुशिक्षित स्त्री है। वह उसमें आत्मविश्वास पैदा करती है। गुरमीत के ही शब्दों में ''क्या नहीं आता तुझे। सब आता है। ज़रा तेरे पंख खुलने दे। तूने जो उड़ना है न तो आसमान भी नीचे रह जाना है।''[5]

लेखिका हमें भारतीय परिवेश के विषय में भी बताती है कि भारतीय लोग एक दूसरे के जीवन में ताक-झांक करने में अपनी सामाजिकता समझते हैं जबकि पश्चिम में कोई किसी को नहीं देखता, न ही देखने का प्रयास करता है कि यहाँ कौन नया आया है या कब से रह रहा है। रतीन्द्र गर्भवती है इसलिए अमेरिका जाकर अपने इस भय से मुक्त हो जाती है कि कोई यह तो नहीं जानेगा कि वह अविवाहित माँ है। वह शीघ्र ही अपने-आप को उस माहौल में ढाल भी लेती है। ज्यों ही वह बाहर काम करने के लिए निकलती है तो अपने जैसी

कई स्त्रियों से मिलती है। उसका यह भ्रम कि यहाँ कोई किसी को नहीं देखता, औरत यहाँ स्वतन्त्र है-टूट जाता है। उपन्यास में लीडिया, फ्रीन्डैस, जिंसी, मार्था ये सभी स्त्रियाँ पुरुषों की हवस का शिकार बनी हैं। इन सभी पश्चिमी स्त्रियों की जीवन त्रासदी वहां के उन्मुक्त वातावरण के विषय में पुन: सोचने पर विवश करती है। लीडिया जो रतीन्द्र को आश्रम में मिलती है, मात्र छह वर्ष की आयु में ही अपने पिता की दरिन्दगी का शिकार बन चुकी है। उसके बाद कभी भाई, कभी माँ के दूसरे पति सब उसकी देह के साथ खिलवाड़ करते हैं। अपने देश अमेरिका के विषय में कहे गये उसके ये शब्द ''यहाँ क्या है-उबलता खून, सेक्स लहूलुहान दुनिया और वासनाओं का ताण्डव, नृत्य, हिंसा और सेक्स''[6] पश्चिम की पोल खोलते हैं।

डॉ. कुमार नारी मनोविज्ञान की गहरी पहचान रखती हैं। उन्होंने बलात्कार का शिकार बनी बच्ची की मानसिक स्थिति का बहुत ही मार्मिक चित्रण किया है। फ्रीन्डैस नवीं कक्षा में पढ़ते समय अपने ही सहपाठी के बच्चे की माँ बन जाती है। माता-पिता भी उसे सहन नहीं करते। घर से निकाल दी गई फ्रीन्डैस स्वयं बच्ची है पर एक बच्ची को जन्म देती है। उसकी त्रासदी यहीं पर खत्म नहीं हो जाती। प्रत्येक पुरुष उसे उपभोग की वस्तु समझने लगता है। एक समय आता है कि वह पुरुषों को अपने चंगुल में फँसाकर उनका मज़ाक लेती है। यह उसका आक्रोश है समस्त पुरुष जाति के प्रति। एक प्रश्न यहाँ उभरता है कि देह का प्रयोग करके ही पुरुषों से बदला लिया जाना न्यायिक है ? नारी सेक्स को हथियार मानकर यदि अपनी सुरक्षा करने निकले तो भी वह अपनी ही जड़ें खोदने जैसा ही तो है।

लेखिका ने पश्चिमी गोरों का शिकार बनी काली स्त्रियों की पीड़ा को भी सशक्त अभिव्यक्ति दी है। एक अश्वेत स्त्री गोरों के स्टोर पर काम करते हुए अकारण अपमानित की जाती है। यही पश्चिमी ब्लैक फेमिनिज़्म है। पश्चिमी स्त्री इसी के विरुद्ध खड़ी है, क्योंकि वहाँ रंग-भेद के कारण स्त्री को दैहिक शोषण का शिकार होना पड़ता है। आज साहित्य के केन्द्र में वही दलित, शोषित नारी है। वह दूसरों की तरह ही इन्सान है पर अपने रंग की बदौलत गोरों के लिए उपभोग की वस्तु बन जाती है। उपन्यास में अश्वेत जिंसी के निम्नलिखित शब्द मार्मिकता लिए हुए हैं-''मेरे रंग के कारण, मेरी जाति के कारण मुझे अलग-थलग क्यों किया जाता है। मैं तो मैं ही हूँ न। रंग से क्या फर्क पड़ता है। ये देखो मेरे दोनों हाथ। इन हाथों से मैं भी औरों की ही तरफ काम करती हूँ। फिर ? क्यों ऐसा होता है मेरा साथ ?''[7] इतना ही नहीं उसका मालिक उसे ग्राहकों को पटाने के लिए शरीर बेचने पर विवश करता है। कैसे एक स्त्री अपने बल से अपने-आप को देह के ग्राहकों से बचाती है, इसका वर्णन भी मार्मिकता लिए हुए हैं ''कितना मुश्किल था अपना बचाव करना। पर वह खिड़की से कूद कर बाहर आती, सारा शरीर घृणा से जल रहा होता। भागने का मौका न मिलता तो भूखी शेरनी की तरह उन पर झपट पड़ती। इससे पहले कि वे संभले वह उन पर वार करती और ग्राहक भाग खड़ा होता।''[8] काली औरत की देह का प्रयोग पुरुष पैसे कमाने के लिए कर सकता है अपनी भूख को मिटाने के लिए कर सकता है किन्तु इसे इन्सान नहीं समझता। गोरे मालिक इन काली स्त्रियों से रोजमर्रा का काम करवाते और अपनी इच्छानुसार कभी इन्हें पैसा दे देते। इन काले लोगों को गोरे अपना गुलाम समझते थे। इन लोगों को ईश्वर ने गुलाम बनाकर पैदा नहीं किया

था। यह भेदभाव की दीवारें मनुष्य ने अपने स्वार्थ के लिए ही खड़ी की थीं। इस प्रकार नोमजा की माँ भी गोरे मालिक और उसके दोस्तों की हवस का शिकार बनती है। लेखिका यह स्पष्ट करने में सफल रही है कि पुरुष के लिए स्त्री एक मनुष्य नहीं बल्कि देह है। वह उसके लिए शारीरिक ताप को बुझाने वाली वस्तु के अतिरिक्त कुछ नहीं है। उपन्यास में एक तरफ जिंसी है जो अश्वेत होने के कारण गोरों द्वारा अपमानित की जाती है और काम खत्म करने के बाद उसका मालिक तक उसकी अस्मिता लूटने पर तुला रहता है तो दूसरी तरफ मार्था है जो मालिक हेनरी और उसके दोस्तों की हवस का शिकार बनती है। पुरुष अपनी दैहिक भूख मिटाने के लिए न तो स्त्री का रंग देखता है और न ही उसकी जाति। यहां वह मात्र एक वस्तु है जिसका प्रयोग किया जाता है और छोड़ दिया जाता है।

भारतीय और पाश्चात्य दोनों ही संस्कृतियों में नारी की स्थिति लगभग एक जैसी ही है। भारतीय नारी यदि रिश्तों में आबद्ध होकर शोषित हो रही है तो पाश्चात्य नारी स्वच्छंदतावादी दृष्टिकोण के चलते भोग की वस्तु बन कर रह गई है। लेखिका नारी की स्वतन्त्रता और उन्मुक्त जीवन जीने की पक्षधर हैं किन्तु क्या एक भारतीय नारी पश्चिम में जाकर अपने संस्कारों से मुक्त हो सकती है ? पश्चिमी संस्कृति व्यक्ति को सिर्फ अपने लिए जीना सिखाती है, जबकि भारत में व्यक्ति के सम्मुख पूरा समाज है वह दूसरों के लिए भी जीता है। विदेश में जाकर रतीन्द्र विल्सन और कैंट के प्रति आकर्षित तो होती है लेकिन उनसे विवाह नहीं कर पाती क्योंकि वे दोनों ही कई अन्य स्त्रियों के सम्पर्क में रह चुके हैं। जबकि रतीन्द्र के संस्कार मुक्त प्रेम के विरोधी हैं। विदेश में जाकर भी वह अपनी भारतीय मानसिकता से बाहर नहीं निकल पाती। वहाँ उसकी जीवन-शैली जरूर बदलती है पर जीवन-दृष्टि नहीं।

डॉ० कमल कुमार का मन आधुनिक, हृदय संवेदनशील और दृष्टि विश्लेणात्मक है। वे न तो पूर्व से मोहग्रस्त हैं और न ही पश्चिम की स्वच्छंदता उन्हें खटकती है। वे नारी की स्वतन्त्रता और स्वच्छंदता की पक्षधर हैं। रतीन्द्र को विदेश भेजकर वह यह दिखाना चाहती हैं कि नारी में अपार संभावनाएँ हैं। उसका अपना अस्तित्व है, उसका अपना वजूद है और उसे कायम रखने के लिए अद्भुत क्षमता भी उसमें है। बस आवश्यकता है पुरुष समाज के साकारात्मक रवैये की, एक स्वस्थ सोच की। जब तक वह स्त्री को अपने जैसा मानव नहीं समझता तब तक भारत क्या और पश्चिम क्या नारी इसी तरह शोषित होती रहेगी। पुरुष का यह रवैया कि वह उपभोग की वस्तु है, उसकी दैहिक सन्तुष्टि का एक उपकरण है। लेखिका स्त्री को पुरुष की निरंकुशता से बचने के लिए खुद की शक्ति पहचानने की हिदायत देती हैं, क्योंकि उसकी देह के व्यापारी हर जगह, हर देश में मौजूद हैं।

**संदर्भ**

1–8. कमल कुमार, हैमबरगर, पृ. 13, पृ. 15, पृ. 57, पृ. 146, पृ. 158, पृ. 161

ooo

संस्मरण

# फरिश्ते से बेहतर है इन्सान होना

❑ पद्मा सचदेव

माज़ी में जाना जैसे जी हुई ज़िन्दगी को दोबारा जीना। ज़िन्दगी को काटने के लिये भी ज़िन्दगी को जीना पड़ता है। बात श्रीनगर की है। उन दिनों टेलीफोन करने के लिए ओपरेटर से नम्बर मांगना पड़ता था कई कई मिन्ट लग जाते थे।

1960 की बात है। मैं श्रीनगर के ड्रुगजोन हस्पताल में तीन साल से बीमारी से लड़ती-लड़ती आखिर जीत गई थी। बीस बरस की उम्र में आदमी ज़िन्दगी का हर पल जीना चाहता है। खुदा मेरे अब्बा जी डॉ. हजीजुल्लाआह साहेब को जन्नत में जगह दें उन्होंने एक मुर्दे को ज़िन्दा किया था। उस हस्पताल में गाँव से आई किसान औरतों के बीच मैं हीरोइन थी सब प्यार करते थे।

उन दिनों टेलीफोन करने के लिए गेट पर जाकर चौकीदार की मिन्नत करनी पड़ती थी। फिर टेलीफोन ओपरेटर टेलीफोन मिलाती थी। मैं टेलीफोन पर अपने कॉलेज की सहेली से बातें कर रही थी। बीच में एक मर्दाना आवाज़ आई। मेरी दोस्त का नाम लेकर उसने ऐहतराम से कहां मैं शमीम अहमद शमीम बोल रहा हूँ कैसी हैं आप। मैं अदाब बजा लाता हूँ। मेरी दोस्त चुप रही मैंने उसे कहा तुम टेलीफोन छोड़ो। मैं इसे देखती हूँ। मैंने फोन ज़ोर से पकड़कर निहायत गुस्से से कहा।

आप शमीम हो या करीम मेरी बला से पर आपको इतनी तमीज नहीं है कि जब दो खातून बात कर रहीं हों तो बीच में बोलना बत्तमीजी कहलाता है, आप बेशक बेहद बत्तमीज शख्स है। मैंने अपनी ऊँची आवाज़ में न जाने कितनी गालियाँ दीं। और फोन पटक कर गुस्से से लाल हुई सीढ़ियां उतर कर अपने बार्ड में चली गई। मुझे याद आया शमीम हस्पताल के डॉक्टर ताहिर मिर्ज़ा के दोस्त थे।

डॉ० ताहिर मिर्ज़ा डॉ० कम शायर ज्यादा थे। सुबह जब वो हस्पताल में आए तो मुझे देख कर बोले अरे पद्मा तुमने मेरे दोस्त शमीम को इतनी गालियाँ दीं कि वो हैरान रह गया। उसने मुझ से कहा ऐसी गालियाँ मैंने तो ज़िन्दगी में मैंने कभी नहीं खाईं। ये इतनी तेज़-तर्रार खातून कौन है।

डॉ० ताहिर मिर्ज़ा हंस रहे थे और मैं गुस्से में लाल हो रही थी। मैंने उनसे कहा डॉ० साहिब आप इतने अच्छे इन्सान हैं। दोस्ती के नाम पर आपने ये क्या गधे पाल रखे हैं। दो लड़कियाँ आपस में बात कर रही हैं और ये बेशर्मी से सुन भी रहे हैं और दखल भी दे रहे हैं।

डॉ० ताहिर मिर्ज़ा मुस्कुरा कर चले गए। उनको पता था मैं शायरा हूँ। मैं अपनी नज़्मे डोगरी से उर्दू में अनुवाद करती तो वो रसालों में छपने के लिये भेजते थे। ऐसा था हमारा माज़ी। मैंने एक नज़्म लिखी थी,

*''थक ही गई थी हारी न थी।*
*डॉ. ठीक करो अब जल्दी''*

मैं ठीक हो गई थी। सारी दुनिया को अपनी बांहों में बांध लेना चाहती थी। हस्पताल में बीमार औरतों को बुनाई सिखाती, अलिफ़ बे सिखाती वो निहाल रहती मुझे बेहद प्यार करती और अपनी दुआओं में मुझे शामिल करतीं।

या अल्लाह ये छोटी है, मासूम है, इसे शफ़ा दो। मैं तब पद्मा नहीं फातिमा होती और मेरा ठीक हो जाना उनकी दुआओं का सदका था।

उन दिनों हस्पताल में एक सोशल वर्कर मिसेज मैकलीन आती थी। वो मुझे हमेशा किसी न किसी काम में मसरूफ पाती। ज्यादातर मेरे हाथों में बुनाई रहती। मिसेज़ मैकलीन को मालूम था। एक दिन मैंने उनकी टोपी उतरवा ली थी। और दूसरे दिन वैसे ही बुनी हुई टोपी उन्हें दिखा दी थी। उन दिनों श्रीनगर में आलिम फ़ाजिल दरवेश जैसे दिखाई देने वाले वाइस चान्सलर आसिफ अली असगर फैज़ी थे। उनकी निहायत पुरखलूस बेगम सुलताना फैज़ी हमारी मिसेज़ मैकलीन की दोस्त थीं। मिसेज़ मैकलीन ने देखा ये मिसेज़ फैज़ी पिछले महीने-भर से कुछ बुन रही है। पर वह तीन इंच से ज्यादा नहीं बढ़ पाया। उन्होंने डिज़ाइन की किताब और ऊन लाकर मेरे बैड पर पटक दी। मैंने बुनाई में अपनी शौहरत को मद्देनज़र रख कर पन्द्रह दिनों में एक निहायत मुश्किल पर खूबसूरत गोलशाल बना कर उनकी नज़र कर दिया। मिसेज़ फैज़ी इसे देख कर इतनी खुश हुई कि एक दिन हस्पताल आ पहुँची। उनके आने पर हस्पताल के सुपरइन्टैन्डेन्ट डॉ० श्री हफ़ीजुल्लाह साहब की हिदायत के मुताबिक वार्ड के बाहर तिकोने पार्क में दो कुर्सियां लग जातीं और हम बातें करते रहते उनके कहने पर मैं उन्हें ''अम्मा कहती थी'' श्रीनगर तब एक बसा बसाया कुन्बा था। जिस पर खुदा की रैहमत और लोगों की मुहब्बत का शामियाना लगा रहता था।

आप कहेंगे ये लेख शमीम पर है या माज़ी पर तो मैं मुआफ़ी चाहूँगी पर माज़ी की गलियों में आदमी गुम होकर कहीं से कहीं जा निकलता है।

एक दिन मैं और मिसेज़ फैज़ी बाग में बैठकर बातें कर रहे थे कि तेज़ हवा की तरह शमीम आए और कहने लगे।

''मिसेज़ फैज़ी मैं यहां से गुजर रहा था तो बाहर आपकी गाड़ी देखकर सुराग लगाते हुए कि हस्पताल में आप किस खुशनसीब के पास आईं हैं यहाँ तक पहुंच गया। मिसेज़ फैज़ी ने मुझे देख कर कहा ये पद्मा है भई, डोगरी की बहुत बड़ी शायरा और बहुत खूबसूरत इन्सान।''

शमीम ने हंसते हुए शरारतन कहा जी बेशक, मैं इनकी इतनी गालियाँ सुन चुका हूँ, खा चुका हूँ जो इस रियासत में आज तक मुझे किसी ने नहीं दी।

वहीं बाग़ में एक तीसरी कुर्सी भी आ गई शमीम उस पल से निहायत बेशर्मी से बैठ गये। मैं तो मना नहीं कर सकती थी। बैठते ही मुझ से मुबातिब हुए जैसे बरसों से ही जानते हों।

''पद्मा जी आपकी वो दोस्त कैसी है ?'' मैंने जलभुन कर कहा ''आपसे मतलब'' वो बिना हिचकिचाहट के कहने लगे ''अरे, आपकी दोस्त है तो हमारी भी दोस्त हुई न ?'' इस बात का जवाब मेरे पास न था। अम्मां को चूंकि सारी बात मालूम थी वो हंसते-हंसते बात पलट कर बोली ''अरे चलो इसकी गज़ल सुनते हैं जो इसने कल ही लिखी है।''

ये शमीम अहमद शमीम से मेरी पहली मुलाकात थी। मैं उन्हें पहचानने लगी थी। फिर श्रीनगर की वो शाम जब शकीला बानो का प्रोग्राम था। उसकी हाज़िर जुआबी के क्या कहने उनकी एक एक अदा सौ सौ जवाब देती थी। में चमत्कृत होती। उनको मुझसे भी ज्यादा शेयर याद थे। अब्बा जी (डॉ. हफीजुल्लाह साहेब) को मालूम था मैं उसका प्रोग्राम देखना चाहती हूँ। उन्होंने मुझे अपना टिकट देकर कहा था।

पद्मी जब प्रोगाम खत्म हो जाए तो फोन कर देना तुम्हें लाने के लिए गाड़ी भिजवा दूँगा।

मुझे पद्मी सिर्फ अब्बा जी कहते थे। ज़िन्दगी से कोई गिला न था। उन दिनों रात के दस बजे बाहर रहना बड़ी बात थी। शकीला बानों भोपाली को सुनना एक सुअवसर था। जो ज़िन्दगी भर याद रहा। उसका प्रोग्राम खत्म होते ही सब लोग चले गये। मैंने एक तरफ बने टेलीफोन बूथ पर जाकर ओपरेटर को कहा डॉ० हफीजुल्लाह साहब की बेटी हूँ। मैंने घर से गाड़ी मंगवाने के लिए फोन करना है। वहीं कहीं से शमीम साहेब की आवाज़ आई।

अरे आप आइये मैं छोड़ देता हूँ। जीप में पीछे मेरी बहनें लदी हैं आप भी वहीं लद जाइये।

मैंने शुक्र किया। अल्लाह मियां मेहरबान हैं। अब्बा जी को पता नहीं चलेगा। मैं रात को कब वापस आई। उसके बाद जब मैंने अपनी दोस्त से बात की शमीम ने कभी दखल न दिया।

1961 की सात जनवरी को मैं हस्पताल में तीन साल बिताने के बाद रिहा हो गई। बिल्कुल ठीक होकर एक नई पद्मा। 1961 ही की जनवरी में किसी दिन लेखकों, अखबार-नवीसों, दानिशबरों व शायरों का एक जत्था पहली बार रियासत के बाहिर गया। बक्शी साहेब रियासत के प्रधानमन्त्री कहलाते थे। उन्होंने ही नाम चुने थे। इसमें मेरा भी नाम था। जत्थे में शमीम भी थे। उनके रहने से कभी कोई उदास नहीं होता था। उन दिनों कल्चरल अकादमी के सैक्रेटरी उर्दू के मशहूर लेखक अली जवाद जैदी हुआ करते थे। शमीम ने उन पर एक शेयर कह दिया।

''मेरी जुल्फों का कैदी आ रहा है,

अली जवाद जैदी आ रहा है''

क्या खूब शेयर था। कहकहे लगते सबसे ऊँचा कहकहा शमीम पर होता। मुझे याद है हम भोपाल भी गए थे। वहां एक जगह मुशायरा हुआ तो मशहूर शायर असद भोपाली भी थे। उन्हें पढ़ा बहुत बार था, देखा पहली बार। मेरा भी अपने शहर से बाहर कहीं तआरुफ हुआ था। सब ने बड़ी तारीफ की मैंने ''राजा के महल'' कविता पढ़ी। उन दिनों सब वहीं सुनाने को कहते थे।

शमीम हर जगह मजूद रहते। डोगरी के डान्स हो या उर्दू में नाटक वो हर जगह हिस्सा भी लेते थे। नाटक में वो अपने डॉयलाग भूल कर कुछ भी बोलते और बाकियों को उसे पकड़ना पड़ता। उनका डॉयलाग हर बार नया होता। शमीम कहते जहाँ मैं कहूँ वहीं से आप डॉयलाग बोलो। मुसीबत आ जाती पर उनकी शख्सीयत कुछ ऐसी थी, ऐसा अपनापन होता कि उनकी बात कोई न काटता। हमारे ट्रुप में एक कलाकार रानी जम्वाल थी। उनकी आंखें निहायत खूबसूरत और खूब बड़ी थीं। शमीम मेकअप मैन से कहते।

देखो मेकअप करते वक्त मेरी आंखें रानी की आंखों से बड़ी कर देना। हम सब हंसते रहते और मेकअप मैन घबराया-सा रहता।

हमारे ट्रुप में मशहूर जर्नलिस्ट और लेखक सत्ती साहनी भी थे। निहायत ही सलीकेदार आदमी। शमीम कहते एक पोटली में शुक्रिया, थैन्कस, मे आई, यैस मैडम, जी हजूर डाल दिया जाए तो वो सत्ती साहनी होंगे।

इसी ट्रुप के दौरान हमने कहीं रेल से जाना था। मुश्किल से ट्रेन पकड़ी तो शमीम औरतों वाले डिब्बे में आकर एक बड़े से पैकेट पर बैठ गए। थोड़ी देर बाद बाथरूम में से एक औरत तौलिये से हाथ पोंछती हुई निकली। तो शमीम को देखकर भड़क उठी। उसकी चिल्लाने की आवाज़ से सारी औरतें इकट्ठा हो गईं। वो चिल्ला कर कह रही थी।

''उठो उठो जिस पैकेट पर तुम बैठे हो उसमें मेरी बेश कीमती क्रोकरी है। वो टूट जाएगी, उठो।''

शमीम ने बड़ी मासूमीयत से कहा ''मोहतरमा वो तो अब तक टूट ही चुकी होगी आप मुझे क्यों उठाती हैं ट्रेन में सभी औरतें हंसने लगीं। उस औरत ने पैन्तरा बदल कर कहा, ''तुम औरतों के डिब्बे में कैसे आ गये मैं अभी चैन खींचती हूँ।''

मैंने आगे आकर कहा, ''ये मेरा भाई है हमें ट्रेन पर चढ़ाने आया था तो ट्रेन चल पड़ी अब अगले स्टेशन पर ट्रेन से उतर जाएगा। मेहरबानी करके अब आप थोड़ा-सा इन्तज़ार करिये।''

आहा, फिर याद आता है शमीम को एक लड़की पसन्द आ गई थी। कभी मुलाकात होती तो कहते ''पद्मा तुम्हारी भाभी की आंखें इतनी खूबसूरत हैं कि डूब जाने को जी चाहता है'' फिर शादी हुई बच्चे हुए। मैंने शमीम की बीवी को देखा लंबी छरहरी बहुत सुन्दर आंखों वाली। मैंने उसे प्यार से कहा, ''तेरी आंखों के सिवा दुनिया में रखा क्या है।'' शमीम की बातें हवा में खुशबू की तरह उड़ती रहती। वो पार्लीमैंट के मैंबर हो गये थे।

उन्हीं दिनों मेरी शादी नामी गायक सरदार सुरिन्द्र सिंह जी के साथ हो गई। हम लोग मुम्बई आ गये थे तब हम पैडर रोड़ पर रहते थे। दरभंगा हाऊस खूब बड़ा था। वहां शमीम अपने दोस्त यूसफ टैंन्ग के साथ आए थे। मेरा बनाया खाना खाकर तारीफ की। हमने एक बहुत बड़े कमरे में रसोई रखी हुई थी। मेरी सास बहीं तख्तपोश पर बैठती थी। शमीम ने उनसे कहा।

क्या मैं क़ाफिरों की रसोई में हाथ धोने के लिए आ सकता हूँ।

मेरी सास ने कहा ''बेटा ज़रूर आइये। आप हमें क़ाफिर कहते हैं और हम आपको मलेच्छ कहते हैं। शमीम हंसे और झुक कर अदाब करके हाथ धोने लगे उनको ये भी लगा होगा मेरी बहन पढ़े लिखे खानदान में आई है।''

कुछ देर बाद हम अल्ट्रामाउन्ट रोड पर रहने चले गए थे। शमीम वहां भी आए थे। मैं इन लोगों को चाय पिलाकर रेडियो जाने लगी तो बोले टैरस से नीचे देखो। लाल रंग की एक गाड़ी खड़ी है। तुमने ऐसी गाड़ी कभी नहीं देखी होगी जाओ तुम्हें छोड़ आएगी।

जब मैं दफ्तर से वापिस आई तो सरदार जी ने मुझे कहा ''तुम्हारी रियासत में ये पहला आदमी है जिसने मुझे कहा ''ये मेरी बहन बड़ी सादा खातून है। हमेशा इसका ख्याल रखना और साथ रहना'' मेरी आंखों भर आईं।

शमीम को सरदार जी बेहद पसंद आए थे। दोनों बैठकर राजनीति की बातें करते। दोनों में कौन ज्यादा हाजिर जवाब था ये कहना नामुमकिन था। फिर भी जानलेवा खबर भी शमीम ने पहले सरदार जी को बताई थी। उन्होंने जब शमीम को पहली बार आंखों के इलाज के लिए अमेरिका भेजा तब मुझे पता चला उसे आंखों का कैन्सर है। ये जानलेवा खबर थी जो पूरी रियासत में बीमारी ही की तरह फैल गई थी। शमीम हर दिल अज़ीज थे।

जब मैंने सत्ती जी से बात की तो उन्होंने कहा। शमीम को अपनी जुबान पर हमेशा यकीन और भरोसा था। वो निहायत अक्लमंद आदमी था। जुबान पर कमान्ड थी। जो भी कहना चाहता कह देता। पार्लियामैन्ट में पांच सौ आदमियों को वही चुप करवा सकता था।

इस दुनिया की गोद से अल्लाह मियां ज़बरदस्ती शमीम को उठा कर ले गए। जो आदमी प्यारा होता है वो सब का प्यारा होता है। वो अपनी बीमारी के बारे में अक्सर इनसे बात करते। मैं शरीक न होती उन्होंने प्रो० नीलांबर देव शर्मा को कहा था :-

''मैं नई ज़िन्दगी की तलाश में अमेरिका जा रहा हूँ। मेरे लिए दुआ करना।'' प्रो. शर्मा बाद में कल्चरल अकादमी के सैक्ट्री हुए तो शमीम से अक्सर मुलाकात होती। शमीम की हाजिर जवाबी और हंसी का खुलापन सब को मिलता था।

जिस राह पर शमीम चलते थे उसके दोस्तों से वह राह भर जाती थी। मुझे मेरे घर में एक बार उन्होंने हंसते हुए कहा था पद्मा अपनी भाबी का ख्याल रखना। कहां रख सकी मैं ?

जब वो मौज में आते तो मुझे कहते जब मैं चीफ मनिस्टर बनूंगा तब मैं सबको कह दूंगा ये खातून चीफ मनिस्टर की कोठी के आसपास भी नहीं दिखाई देनी चाहिये। मैं भी कहती जाओ जाओ मैं तुम्हारी बात थोड़े ही मानूंगी, मैं चीफ़ मनिस्टर की बहन होऊंगी। मुझे कौन गधा रोकेगा। वो प्यार से हंसते। हाय, आज उसे कहां से लाऊं। शमीम जैसे आदमी रोज़-रोज़ पैदा नहीं होते। उसका जाना हम सब के कितने ही ख्वाब तोड़ गया। शमीम पूरी तरह गये भी कहां। वो हम सब के बीच हैं।

ooo

# मरी हुयी मछली

❑ ओम गोस्वामी

नगर तंदूर की तरह तप रहा था।
आसमान से जैसे आग बरस रही थी।

तवी नदी से गुज़र रहे पानी में मिट्टी की वसंती आभा झलक रही थी। शायद पहाड़ पर कहीं बारिश हुयी थी। सैंकड़ों किलोमीटर दूर जब ज़ोरदार वर्षा होती है, तब गेरवें पर्वतों का रंग घुल कर नदी का रंग बदल देता है। यहाँ तक पहुँचते-पहुँचते तवी का रंग उबली हुयी देसी चाय की तरह लाल-भूरा हो जाता है। मनचले लोग कह कर खुश हो लेते हैं-''देखो तवी में चाय की बाढ़ आई हुई है।''

तवी तट पर खेल रहे भिखारी बस्ती के अधनंगे बच्चे चिल्ला उठते हैं-

*''ओ री नदिया तवी सुहानी,*
*जल कहाँ से लाती हो।*
*जल में चाय मिलाकर पगली,*
*किसे पिलाने जाती हो।''*

तब ठिगनी-सी बढ़ थी। पानी ऊंचे तटों से काफी नीचे था। कम के होते हुए भी पानी तीव्र गति से बहा जा रहा था। बाढ़ के जल में किसी पशु का शव बहता हुआ दिखता तो दोनों तटों के पेड़ों पर बैठे कव्वे उत्तेजित होकर काँव-काँव करने लगते। तभी गहरे नीले आकाश से चीलें नीचे आकर जलराशि पर घेरा बाँध लेतीं और बे-फिक्री से आकाश में तिरने लगतीं।

तपती दोपहर में भिखारी बस्ती का बाबा कव्वों का कोलाहल सुनकर झोंपड़ी से बाहर निकला। उसके पीछे-पीछे काली कुतिया अपने पिल्लों के संग बाहर चली आई।

बाबा चलते-चलते बस्ती से दूर नीचे नदी के चौड़े पाट वाले पत्तन पर चला आया था। यहाँ चौड़ाई में फैल जाने से जल की गहराई कम हो जाती थी। कुतिया के आगे चारों पिल्ले इधर-उधर भौंकते हुए दौड़ रहे थे। तीव्र लहरों में बेबस होकर बह रहे साँप को देखकर पिल्लों का भौंकना उन्माद में बदल गया।

---

1. *181-पहाड़ियां स्ट्रीट, जन्मू तवी-180001, (ज०क०)*
2. *यह कहानी हिन्दी दिवस के उपलक्ष्य में आयोजित कहानी गोष्ठी दिनांक 9.9.10 को के. एल. सहगल सभागार में पढ़ी गई है।*

उसी वक्त भिखारी बाबा चिल्लाया-''अरे, उल्लू के पट्ठो। वो साँप तुम्हें कुछ नहीं कहेगा। अभी के उसे खुद अपनी जान के लाले पड़े हैं। आया समझ कुछ! गधो! बे-बात पर भौं-भौं मचा देते हो।''

किंतु, पिल्लों का भौंकना जारी रहा।

हथेली पर तंबाकू डालकर बाबा इसमें चूना मिलाने लगा। फिर अंगुलियों के दो पोरों से दबाकर इसे मुँह के भीतर पीछे मसूढ़ों के निकट रख दिया।

दुनिया में उसका कोई न था। एक दिन न जाने यह कुतिया कहाँ से चली आई और उसके टखने सूंघने लगी। बाबा घबराया, कहीं काट न ले। जब वह सूंघ कर दुम हिला रही थी-बाबा ने जाना यह तो मित्रता का संकेत है। तब उसके सिर पर हाथ फेरकर कहा-बैठ जा, तो वह उसके पैरों से सटकर बैठ गई।

उन्हीं दिनों उसने पाँच पिल्ले जने। एक मर गया तो उसे मुंह से उठाकर भिखारी बस्ती से बाहर फेंक आई। बाबा खुद खाना खाकर बचा-खुचा उसको और उसके पिल्लों को दे दिया करता। शुक्रगुज़ार कुतिया वहीं उसकी झोंपड़ी के पिछवाड़े में रहने लगी।

मौसम साफ होने पर वह तवी के तट पर आकर बैठ जाया करता। कभी-कभार जल में दिखने वाली मछली की ओर इशारा करके कहता-''काली, जा उसे ले आ।'' कुतिया तुरंत पानी में कूद पड़ती। लेकिन, तब तक मछली कहीं दूर निकल चुकी होती। लेकिन उस दिन कुतिया जब मछली को जबड़ों में दबाए पानी से बाहर निकली तो सारी भिखारी बस्ती ने उसे ताज्जुब से देखा। उस दिन से बाबा को इस बस्ती में इज़्ज़त से देखा जाने लगा।

कुतिया रात भर उसकी झोंपड़ी के आस-पास भौंकती रहती। बाबा भीतर से चीखता-''रांड तू किस चीज़ की रक्षा कर रही है। इस झोंपड़ी में कोई खज़ाना नहीं दबा। चुप कर जा कमीनी।''

कोई साथी भिखारी कुतिया की बढ़ाई में दो शब्द कह देता तो वह बतलाता-मैं तमाम दुनियावी रिश्ते तोड़कर इस लंबी-चौड़ी दुनिया में अकेला रह गया। अकेला आदमी भूत बन जाता है, मैं भी भूत की तरह भटकने लगा। मगर न जाने यह रांड कहाँ से चली आई। कौन-सा रिश्ता निभाने के लिए मेरे पीछे पड़ गई है। पहले अकेली थी। अब साली ने चार पिल्ले भी जन दिए हैं। इनके लिए भी भीख कमाने की जिम्मेवारी मुझी पर आन पड़ी है।''

''अरे, नाशुकरे! यह बेज़ुबान कुतिया जो तेरे लिए पानी से मछलियां पकड़ कर लाती है, उसका कोई नाम नहीं। जब ये पिल्ले भी मछली पकड़ना सीख लेंगे-तेरी कुटिया में मछलियां ही मछलिया हो जाएंगी। टोकरी में डालकर बाज़ार में मछलियों की फेरी लगाया करना।'' लंगड़े भिखारी ने कहा तो वह गोले की तरह फट पड़ा-''भाग यहाँ से लंगड़े, नहीं तो तेरी दूसरी टांग भी तोड़ दूंगा। मुझे क्या अपनी तरह कमीना समझ रखा है जो कुत्तों और बिल्लियों की कमाई पर पलूंगा।''

अब बस्ती वाले उसे चिढ़ाने के लिए छेड़ते,–''अरे, वो तेरी घरवाली कहाँ है–काली कुतिया।''

कोई पूछता : अब तो तुझे पकी-पकाई मिल जाती है–मौज कर।''

उस दिन वह शहर की ओर जा रहा था कि पहाड़ी से नीचे आती मद्रासिन दिखी। वह रुक गया। जिस दिन इस बुढ़िया का मुंह देखो शहर में कोई हथेली पर खोटा सिक्का तक नहीं धरता-ऐसा मनहूस चेहरा है। वह सीधे उसके पास चली आई तो वह मन-ही-मन जल उठा। ''तुझे ज़रूर अपनी सूरत दिखानी थी। मैं धंधे के लिए निकल रहा था।'' वह जल-भुन कर बोला।

''मैं तो तुझे मुबारक देने आई थी रे! तुम दोनों की क्या शानदार जोड़ी है ?''

''ठीक है, ठीक है रास्ता छोड़'' कहकर वह आगे बढ़ा।

''मैं कहती हूँ पिछले जन्म में यह तेरी पत्नी रही होगी।''

दूर खड़ा लंगड़ा भिखारी हंसा–''मां, क्या पता पिछले जन्म में वो इसकी मां लगती हो।''

''हट साले लंगड़े! भिखमंगे की औलाद। पाजी कहीं के।'' वह चीखा।

मद्रासिन कहे जा रही थी–''तेरी घरवाली दुराचारिणी रही होगी, जभी इस जन्म में कुतिया बनी। उसके चाल-चलन के कारण तूने दुनिया ठुकरा दी होगी जो इस जन्म में आकर भिखमंगा बना।''

''अरी बुढ़िया! पिछले जन्म का ज्योतिष बताती है–तूने क्या किया था जो इस जन्म में भिखारिन बनी ? घरवाला भी भिखारी मिला और बच्चे भी भिखभंगे जने।''

''तू हमारी बराबरी करता है। अरे, हम इज़्ज़तदार भिखारी हैं तेरी तरह नहीं।''

''कौन-सी इज़्ज़त है तेरे पास''।

''हमारा वोट बना हुआ है। हमें सस्ते राशन का कार्ड भी मिला हुआ है। तेरे पास क्या है–सिवा काली कुत्ती और उसके पिल्लों के ?''

लंगडा भिखारी बोला–''वह इसके पास रह कर अपने पिछले जन्म के पापों का प्रायश्चित कर रही है। कहते हैं कुत्तों को अपना पिछला जन्म याद होता है।''

वह चुपचाप चढ़ाई चढ़ने लगा फिर रुक कर बोला–''सुबह-सुबह तुम दोनों की मनहूस सूरत देखी है–आज तो भूखों रहकर प्रायश्चित की नौबत आएगी।''

मद्रासिन बोली–''भूखों मरना है तो घर में ही बैठ न, फिर पौड़ी क्यों चढ़ रहा है।''

वह अपनी झोंपड़ी की ओर वापिस लौट पड़ा। किंतु वहाँ न जाकर तवी के तट पर चला आया। यहाँ बैठ कर बहते पानी को देखने लगा। कुछ देर बाद धंधे के लिए शहर में जाऊंगा। इन मनहूसों को मुंह न लगाना ही अच्छा है।

कुतिया ने उसे लौटते हुए देख लिया था। वह उसके पास चली आई। वह उसे अपने पास खड़े देखकर हैरान हो गया। फिर बोला–''क्या सचमुच तू पिछले जन्म का पश्चाताप कर रही है। इस जन्म में मैं तुझे औरत न समझूंगा। हम भिखमंगे हैं। दुनियादारी के झंझटों से हमारा क्या लेना-देना ?''

तभी उसने देखा लकड़ी का एक काला-सा तना बहता जा रहा है। तने पर एक गिलहरी इधर से उधर छलांगें मार रही है।

''यह है ज़िंदगी''–वह बोला,''चारों ओर मौत है, मगर ये इस सब से बेखकर भाग-दौड़ में लगी है। तने ने पलटा खाया तो सारी मस्ती पानी में डूब जाएगी।''

तभी उसने देखा तने के ऊपर एक खोखल से सिर निकाले नाग भी बहा जा रहा है। अझिप आँखें फाड़े वह दुनिया का मुजरा देख रहा है। टूटे तने की उसकी किश्ती बहे जा रही है। गिलहरी ने उसे देखा नहीं है। यदि देखा है तो इस बात से निडर है क्योंकि नाग पर भी वही संकट छाया हुआ है जिसे वह उछल-कूद कर झेल रही है।

''अरी गिलहरी! तू बहुत बदमाश है। तूने जान लिया है कि मुंह बाएं बहती मौत से वो साँप भी डरा हुआ है इसीलिए बे-खौफ होकर नाच रही है। अरी पागल है तू। मत भूल वह साँप है। सिरे का बदमाश। मरते-मरते भी तुझे निगल जाएगा। तू पानी में कूद जा और तैर कर बाहर आ जा''।

देखते ही देखते वह तना बहकर आँखों से ओझल हो गया। वह धीमे से बुदबुदाया ''तू नाचते हुए मरेगी और अगले जन्म में किसी राजा के दरबार की नर्तकी बनेगी।''

तभी उसकी नज़र चार मरी हुयी मछलियों पर पड़ी। उससे खुशी और उत्तेजना संभाले न संभली। वह चीख पड़ा–''ए काली! वहाँ मछलियां हैं। पहले बड़ी वाली निकाल। बाकी की बाद में ले आना''।

कुतिया ने शायद पहले से मछलियों को देख रखा था। वह तेज़ी से आगे बढ़ी। फिर किनारे पर रुक गई। पानी में कूदी नहीं।

वह चिल्लाया–''रांड, रुक क्यों गई, लगा दे छलांग। वहाँ वो तेरा बाप सांप नहीं है–डर मत! देर लगाएगी तो तुम्हें पानी दूर बहाकर ले जाएगा।''

इतनी दिलेरी देने के बावजूद कुतिया नदी में न कूदी तो वह दुबारा चीख उठा–पिछले जन्म में तू दुराचारिणी थी इसी से इस जन्म कुतिया बनी। मेरा कहना न मानेगी तो अगले जन्म में नाली का कीड़ा बनेगी।

और सुन.....तू मछली नहीं लाएगी तो आज भूखी रहेगी।''

कुतिया जैसे पर तौल रही थी। वह कुछ कदम पीछे हटी और फिर एकाएक मछलियों की ओर कूद पड़ी।

छपाक की ध्वनि हुयी। किंतु, वह अपना आप संभाल न पाई। पानी का तेज़ बहाव उसे बहाकर अपने साथ ले जाने लगा। मछलियां भूल कर वह पानी से जूझ रही थी। बाढ़ के पानी से गर्दन बाहर निकाले वह बहती जा रही थी।

छोटे-छोटे पिल्लों को जैसे खतरे का अहसास हो गया था। वे भौं-भौं करते हुए बहाव की दिशा में तट के साथ-साथ दौड़ने लगे।

वह ऊंची आवाज़ में बोला-''अपनी मां को आखरी टा-टा करो पिल्लो-भौं-भौं.....।'' कुछ कदम दौड़ने के बाद पिल्ले वापस लौट आए और उसके पैरों के निकट बैठ गए।

उसने एक पिल्ले को उठाकर उसके सिर पर हाथ फेरा-''तेरी मां वापस आएगी। वह तुम सब के लिए मछली लाने गई है। वह अच्छी कुतिया है, ज़रूर आएगी।'' फिर नदी की ओर देखकर हाँक लगाई-''काली जल्दी आना''

एकाएक उसे कुछ याद आया। पिल्ले को नीचे फैंककर उसने अपने भीख डालने के झोले को झाड़ा फिर बोला- बेकार में टेम खोटा हो गया। भीख मांगूंगा तभी पेट भरेगा।

उठकर वह नगर की ओर चल पड़ा।

कुछ कदम चलकर उसने पीछे मुड़कर देखा-फिर बोला-''तुम घर की रखवाली करना जैसे तुम्हारी मां किया करती थी, समझे।''

शाम ढल रही थी। वह नगर का फेरा लगाकर अपनी कुटिया में चला आया। पिल्लों ने उसे आते ही घेर लिया। वे भौंकना भूल कर फूं-फूं कर रहे थे। उस को लगा जैसे वे कुछ पूछ रहे हैं उससे।

वह उन्हें बतलाने लगा-''दुनिया में कोई किसी का नहीं है। सब अपने मतलब के हैं। मैं भी तो दुनिया का सब से बड़ा मतलबखोर भिखारी हूँ.....और वह तुम्हारी मां, पगली कहीं की पिछले जन्म का नाता तोड़कर आज़ाद हो गई। अब तलक उसकी लाश पाकिस्तान में दाखिल हो चुकी होगी। यह बात जितनी जल्दी समझ लो उतना अच्छा। अगर ससुरी बच गई तो वहां नया खसम कर लेगी। वहां कुत्तों की कमी नहीं है।''

एक पिल्ला उसके पैरों से लिपटने लगा। बाकी के तीनों कूं-कूं करते उसके भीख वाले थैले में मुंह डालने लगे।

एकाएक वह जोर से चीख पड़ा-''उसमें पड़ी रोटियां तुम्हारे लिए नहीं हैं। खुद मैं भूखा रहूँ और तुम्हारा पेट भरता रहूँ, ऐसा दानी मैं नहीं हूँ।''

उसकी डपट से चारों पिल्ले सहम कर बैठ गए। थैली में हाथ डालकर उस में रखी रोटियां तोड़कर वह चबाने लगा। उसकी ज़ोरदार चीख के कारण पिल्लों को दुबारा कूं-कूं करने का साहस न हुआ। वे एक दूसरे से जुड़कर कुटिया के कोने में दुबक कर बैठ गए।

रात गहरा रही थी।

मां के बाढ़ में बहने के बाद से पिल्लों ने कुछ न खाया था। तभी कुटिया के दूसरे कोने में एक चुहिया आन निकली। भूख से बेहाल पिल्लों में से एक ने सचेत होकर फुर्तीला दाँव खेला और चुहिया को नोच लिया। शेष तीनों भी चुहिया पर पिल पड़े। वे चारों इसे खाने के लिए छीना-झपटी करने लगे।

अफीम की पिनक में बहकते हुए वह बोला-''शाबाश! खुद शिकार, मारोगे तो दुनिया में कोई तुम्हें मार न सकेगा।''

फिर करवट बदलते हुए बोला-''भूख से बड़ा गुरु दूसरी कोई नहीं है। यह तथ्य जो समझ ले वही सब से बड़ा ज्ञानी है।''

दिन की बाढ़ के दृश्यों को आंखों में समोए वह गहरी नींद में डूब गया। सुबह होने पर कुटिया से बाहर आया तो देखा तवी शांत हो चुकी थी। तट के निकल लोगों का समूह एक शव को जलाने के लिए लकड़ियों का थाक बैठा रहा था।

आहट सुनकर उसने पीछे मुड़कर देखा। काली अपने पिल्लों की टोली लिए ढक्की की ओर जा रही है।

उस ने आवाज़ लगाई-''ए काली, तू मरी नहीं रांड।.... और वो मछली कहाँ है जिसे लाने के लिए तू बाढ़ में कूद गई थी ?''

न जाने ऐसा क्या हुआ। कुतिया तेज़ी से भौंकते हुए उसे काटने दौड़ी। यह तो काट खाएगी ऐसा भाँप कर वह पीछे मुड़ा और कुटिया में घुस कर किवाड़ बंद कर लिए। काली के साथ-साथ पिल्लों के भौंकने की आवाज़ भी आ रही थी।

''कुतूरों को भूखे रखने पर नाराज़ है हरामज़ादी-दुराचारिणी। अरी, मैंने यहां होटल खोल रखा है क्या ? खुद कुत्तों की तरह यहाँ-वहाँ मुँह मारता हूँ, तब पेट भरता है। ऐसे में तेरे पिल्लों को कहाँ से खिलाऊं ?''

धीरे-धीरे कुतिया और पिल्लों का भौंकना थमा। अब भीख मांगने के लिए निकलना चाहिए। ऐसा सोचकर जैसे ही वह थैली उठाने के लिए झुका, देखा थैली पर एक मछली पड़ी है।

एकाएक वह खिल उठा।

''अरी काली! किस्मत वाली। लगता है पिछले जन्म में सचमुच तू मेरी कुछ लगती थी ?'' कहकर वह तेज़ कदमों से बाहर चला आया। देखा कुतिया पिल्लों को साथ लिए भिखारी बस्ती की पहाड़ी पर दूर जा पहुँची है।

''अरी कमीनी! रूठकर जा रही है-शहर में। वहाँ कौन तेरे मायके वाले बैठे हैं।'' वह इतने ज़ोर से चिल्लाया कि तट पर शव को नहला रहे लोग गर्दन फेर कर उसकी ओर देखने लगे।

उसे लगा उसकी अपनी आवाज़ कुत्तों जैसी हो गयी है। तभी पहाड़ पर पहुँच चुके पिल्ले चौंक उठे-''भौं-भौं-भौं।''

''जाओ, मरो हरामियो! गाड़ी के पहिए के नीचे आओगे तो तमाम हेकड़ी निकल जाएगी।''

वह झोंपड़ी के भीतर आया। थैली पर से मछली को उठाकर बाहर लाया। तब पेड़ के नीचे बैठकर इसकी चोइयां छीलने लगा।

पेड़ पर बैठे कव्वों ने काँव-कांव का शोर डाल दिया।

''मैं समझता हूं तुम्हारी भाषा। लाख कांव-कांव करो एक टुकड़ा नहीं दूंगा।''

मछली को छीलकर इसके टुकड़े काटने के लिए लकड़ी का डक लेने वह झोंपड़ी के पिछवाड़े में गया। अचानक कव्वों का शोर बढ़ गया। वह तेज़ी से आंगन की ओर लपका। देखा एक गंजी चील छीली हुयी मछली को पंजों से पकड़े आकाश में उड़ी जा रही है। उसके पीछे दो-चार कव्वे भी लगे हुए हैं।

पेड़ पर बैठे कव्वों का कांव-कांव अभी भी जारी था।

उसने माथे पर हाथ मारा-''हाय री किस्मत''

तभी पहाड़ पर जा पहुँची कुतिया के ज़ोर से भौंकने की आवाज़ सुनाई दी।

''हरामी कुतिया, अब भौंकने से क्या फायदा। मछली तो नील गगन में पहुँच गई। तू यहाँ होती तो वह बदमाश चील क्या इस तरह चुपके-चुपके मछली ले जाती। यह सब तेरा कसूर है। अब भौंक रही है, हरामजादी। अब अपना मुँह मत दिखाना।''

खीझकर उसने पत्थर उठाया और पूरी ताकत से कुतिया की ओर उछाल दिया।

ooo

# नागपाश

❒ योगिता यादव

''कृष्ण पक्ष समाप्त हुआ, अब चांद के घटते जाने की पीड़ा से निजात मिलेगी 'परी'। नवरात्र की हार्दिक शुभकामनाएं।''

मेरी जानी पहचानी आवाज़ ने मुझसे फोन पर बस इतना कहा और यह कहकर फोन रख दिया कि वह एयरपोर्ट पर मेरा इंतज़ार कर रहा है।

सोडा वाटर की बोतल की तरह मेरे मन में भी नन्हें बुलबुले उठने-फूटने लगे। एक साल से जिसकी सिर्फ आवाज़ सुन रही थी वही आज सशरीर मेरे सामने उपस्थित होने वाला था। अद्‌भुत है आवाज़ का भी जादू।

नौवीं क्लास के फाइनल एग्जाम चल रहे थे। जब मैथ्स का पेपर और एफ एम पर आमिर खान का इंटरव्यू दोनों एक ही दिन थे। मजबूरन इंटरव्यू आधा ही छोड़ना पड़ा। रात साढ़े दस बजे स्लो वॉल्यूम में मैंने एफ एम फिर से ऑन कर दिया था, वही इंटरव्यू दोबारा सुनने की कोशिश में 11 बजे तक चला था इंटरव्यू। इसके खत्म होते ही एफ एम पर सांप की तरह मन को जकड़ती एक आवाज ने दस्तक दी।

''मैं हूं आपका दोस्त, आपका हमदर्द असद इकबाल।'' सांत्वना से लबरेज इस आवाज से यह मेरा पहला परिचय था। वह कुछ लम्हों को याद करते हुए उनका दर्द बयां करता और फिर उसी से मिलता-जुलता गीत एफएम पर बजा देता। दुखते दिलों को मिलने वाली यह सांत्वना 'यादों के झरोखे से' भली सी लगी थी। अगले दिन मैंने एफएम साढ़े दस बजे नहीं रात ग्यारह बजे ऑन किया।

फिर तो यह मेरा फेवरिट प्रोग्राम बन गया। हर रोज रात को मुझे असद इकबाल की आवाज और यादों के झरोखे में से सुनाए जाने वाले गीतों का इंतजार रहता। मां के डांटने पर ईयर फोन लगाकर चुपके-चुपके बिस्तर में असद इकबाल को सुनती। उन दिनों उसकी सांत्वना मां की थपकियों से भी ज्यादा अच्छी लगने लगी थी। उन्हीं थपकियों के सहारे मुझे नींद भी आ जाती। कई बार तो ईयर फोन सुबह के भक्ति गीतों के मंजीरे की आवाज़ के बाद कान से हटता। तब अपनी बेवकूफी और असद इकबाल की आवाज़, मैं दोनों पर फिदा हो जाती।

---

*1. यह कहानी हिन्दी दिवस के उपलक्ष्य में आयोजित 'कहानी गोष्ठी' दिनांक 9.9.10 के. एल. सहगल सभागार में पढ़ी गई।*

शहर छूटा तो ये आवाज़ भी छूट गई। तब जब मुझे सांत्वना और थपकियों की सबसे ज़्यादा ज़रूरत थी दोनों ही मुझसे दूर हो चुके थे। मेरी सिसकियां थपकियों का इंतज़ार करती रह गईं और उन्माद जकड़न के बिछोह में कुम्हलाने लगा। जो गीत असद इकबाल ने सुनाएं थे इस नए घर, नए शहर में भी एक बार नहीं कई बार सुने पर उनके बीच से वह जकड़ती हुई आवाज़ गायब थी जो मुझे जकड़ कर अपने साथ रात से सुबह तक की निर्बाध यात्रा पर ले जाया करती थी।

फिर एक रोज़ वही आवाज छन्न.....से आ गिरी।

मेरी व्यस्त और खुशहाल दिनचर्या में। मेरी भीतर का पानी छलक कर बाहर आने को आतुर हो गया।

यह अनुभव की आवाज थी। हू ब हू असद इकबाल जैसी। फोन मैंने ही किया था, उसके उपन्यास पर उसे मुबारकबाद देने के लिए। पर बात कहां कर पाई थी। अरसे बाद किसी आवाज ने मुझे फिर से अपनी जकड़ में ले लिया था।

तमाम रेडियो जॉकी से उलट उसकी आवाज शब्दों को चबाती नहीं थी, उन्हें भरपूर खिलने और खेलने का मौका देती थी। किसी दार्शनिक की तरह। शब्दों के बीच में पिरोयी चुप्पियां सुनने वाले को पर्याप्त धैर्य और सोचने का मौका देतीं।

मैं उसकी आवाज़ सुनती और फिर घंटों हर शब्द पर सोचती। जादू सिर्फ आवाज़ का ही नहीं बात का भी था। जादू मेरे सिर चढ़ चुका था।

फिर तो फोन का, एस एम एस का सिलसिला चल पड़ा। पहले छठे-चौमासे, फिर हर महीने, हर हफ़्ते, हर रोज़ और अब तो एक ही दिन में कई-कई बार हमारी फोन पर बात हो जाती या एस एम एस बाजी। वही आवाज़ थी जो आज मुझसे मिलने आ रही थी। बुक फ्लैप पर उसकी छोटी सी तस्वीर भी छपी हुई थी। पर मुझे वह कभी अच्छी नहीं लगी। मेरे कानों के रास्ते जो आवाज मेरे मन की बावड़ी में सीढ़ी दर सीढ़ी उतर गई थी वह बुक फ्लैप पर छपी उस तस्वीर से लाख गुना बेहतर थी।

''वो आखिर आ ही रहा है, आज मुझसे मिलने।''

मैंने अपने-आप को फिर से यकीन दिलाया। मिले बिना ही हम कितना जानने लगे थे एक-दूसरे को।

इस बीच कितनी बार उसने मुझसे मिलने के लिए कहा, पर मैं हर बार टाल गई। मुझे कभी जरूरत ही महसूस नहीं हुई उससे मिलने की। मेरी आत्मा को तो उसकी आवाज़ ठग ले गई थी, चेहरा देखकर 'अगर मैं उस ठगी से बच जाती तो.....' अनिष्ट की यही संभावना मुझे उससे मिलने से हर बार रोक लेती। मेरी खोई हुई जकड़ फिर वापस आ गई थी इस आवाज के साथ।

''हमें दूसरों की इच्छा का भी सम्मान करना चाहिए।'' आज भी यही सोचकर मैं चली आई थी घर से उस जानी-पहचानी आवाज के आकार से मिलने। सिर्फ इसी सम्मान की खातिर मैं एयरपोर्ट पहुंची हूं, ऐसा भी नहीं है। उसे देखने की एक स्वाभाविक उत्सुकता मेरे भीतर भी उमड़-घुमड़ रही थी।

हर अंदाज कितना लाजवाब है उसका। चांद के प्रति मोह को कितना जान चुका है वह और फिर दस्तक भी किस अंदाज में दी उसने

''चांद के घटते रहने की पीड़ा से निजात मिलेगी परी।''

''परी'' कितना सुंदर संबोधन है। जानती हूं परी नहीं हूं, 'परी जैसी' तो बिल्कुल नहीं हूं, पर सुनने में अच्छा लगता है। झूठा ही सही।

अब तक मैं एयरपोर्ट पहुंच चुकी थी। पार्किंग से लेकर वेटिंग हॉल तक पहुंचते हुए कभी घबराहट, कभी उत्सुकता, कभी खुशी बारी-बारी से मुझ पर चढ़ती और उतरती रहीं। छोटा सा यह रास्ता मैंने इसी उधेड़बुन में तय किया।

वेटिंग हॉल में अकेला बैठा था वह और मैं भी अकेली थी। जितना सोच रहे थे, पहचानने में उतनी मुश्किल हुई नहीं।

''जी नमस्कार.....कैसे हैं आप.....सॉरी मुझे आने में थोड़ी देर हो गई। आप भी अजीब हैं, अगर पहले अपने आने की खबर दे दी होती तो इतना इंतजार तो न करना पड़ता।'' मैंने एक ही सांस में कई शब्द उस पर उड़ेल दिए। शब्दों में और बातों में, मैं उसकी तरह अभ्यस्त नहीं थी।

''मैंने सोचा तुम्हें सरप्राइज देना चाहिए।''

''अच्छा सरप्राइज है.....''

पहली मुलाकात की औपचारिकता का लिहाज किए बिना ही उसने अपने अंदाज में मेरे सामने खुद का स्वागत करने की पेशकश की-

''तुम आए तो आया मुझे याद गली में आज चांद निकला.....गुनगुनाएंगी नहीं मेरे लिए यह गीत।''

''शटअप, दिन में चांद नहीं निकलता। अभी निकला कहां है, जब निकलेगा तब गुनगुना लेंगे।''

मैंने मित्रता के पूरे अधिकार के साथ उसे झिड़क दिया।

स्त्रियों का सब कुछ चांद से बंधा होता है। यह उसी का असर था शायद। पिछले एक साल में कितनी ही बार रंग बदल चुकी थी मैं। शुक्ल पक्ष में चांद का आकार जब बढ़ने लगता तो मेरी आत्मीयता और मोह भी बढ़ता चला जाता। कृष्ण पक्ष के दौरान चांद को क्षय रोग घेर लेता, मेरा मोह भी इस रोग की गिरफ़्त में आ जाता और मैं मन को आहत करने वाली कोई न कोई बात उससे कह ही देती। फिर खुद भी बहुत दुखी होती।

उन पीले दिनों और काली रातों में यही एक शेयर बार-बार मैं खुद को सुनाया करती।

*''तू बड़ा रहीमो करीम है*
*एक सिफत अता कर*
*उसे भूल जाने की दुआ करूं*
*और दुआओं में असर न हो।''*

यह उलाहना मेरी उसी आदत पर दिया जा रहा था। अमावस्या अपनी कालिमा के साथ बीत गई थी और आज शुक्ल पक्ष अपना चांद लेकर उदित हो रहा था।

''शुक्र है किसी बात पर तो राजी हुईं आप। वरना मुझे लग रहा था कि यहां भी मुझे धर्मशास्त्र पर लंबा लेक्चर पिला दिया जाएगा।''

''छोड़िए धर्मशास्त्र की व्याख्या और चलिए मेरे साथ.....पहले घर चलते हैं। फिर कहीं घूमने चलेंगे।''

मेरे स्नेह और अधिकारभाव ने उसे बाजू से पकड़कर अपने साथ लगभग घसीट लिया।

''अपने पति देव से पिटवाएंगी मुझे घर ले जाकर, भई इतना बड़ा गुनाह नहीं किया है मैंने। आपको अभी तक सिर्फ परी कहा है, प्रिया नहीं।'' मेरे अधिकारपूर्वक घसीटने का विरोध करते हुए उसने कूटनीतिक जुमला उछाल दिया।

''कैसी बातें करते हैं आप ?'' मैंने उसे झिड़क तो दिया पर उसकी इस बात पर मेरे भीतर क्रोध और उपेक्षा का एक अंश भी जागा। फिर भी स्थिति संभालते हुए मैंने कहा ''मेरे सभी मित्रों का वे बहुत सम्मान करते हैं उन्हें कोई ऐतराज नहीं होगा आपके मेरे साथ घर चलने पर। इतनी छोटी मानसिकता नहीं है उनकी। ज़रा रुकिए मैं उन्हें फोन कर देती हूं।''

''फिर भी मेरी इच्छा नहीं है तुम्हारे घर जाने की। मैं यहां बस तुमसे मिलने आया था, सो मिल लिया।

अब मुझे लौटना है।'' मेरे बहुत आग्रह करने पर उसने टका-सा जवाब दे दिया।

इतने लंबे इंतजार के बाद इतनी छोटी-सी मुलाकात से मैं संतुष्ट नहीं थी। और चाहती थी कि हम ढेर सारी बातें करें।

''अजीब हैं आप भी, इतनी दूर से सिर्फ एयरपोर्ट के दर्शन करने आए थे क्या, अच्छा छोड़ो घर नहीं जाते, कहीं बैठकर कॉफी पीते हैं। बहुत सुन्दर शहर है हमारा, अगर देखने की इच्छा हो तो कॉफी के बाद घूमा जा सकता है।'' इस बात पर वह राज़ी हो गया।

''अरे मैं आपको एक चीज देना तो भूल ही गया, जरा एक मिनट रुकिए।''

कहते हुए अनुभव ने अपना ब्रीफकेस खोला और उसमें से रजनीगंधा के ढेर सारे फूल निकालकर मेरी दोनों हथेलियां भर दीं।

असद इकबाल की आवाज, बच्चों की गुलाबी अंगुलियां, शाम की नारंगी छटा और पत्तियों पर ठहरी हरी ओस की बूंदों के अलावा यह वही चीज थी जो मुझे बहुत पसंद थी। रजनीगंधा के फूल।

फूलों की मादक गंध और छुआन मेरे भीतर उतरती चली गई। एक अलग मोहपाश में बंधी मैं और अनुभव, दोनों कैफेटेरिया की तरफ चल पड़े।

बातें बहुत थीं। एक कप की बजाए हमने दो-दो कप कॉफी पी। कॉफी अनुभव की थकान उतार रही थी और मुझे इसी बहाने उसके हाव भाव पढ़ने का मौका मिल रहा था। बची-खुची औपचारिकताएं भी अब लगभग समाप्त होने लगीं थीं।

''यूं तो यह मंदिरों का शहर है, पर आपका भी तो कोई आग्रह होगा। अच्छा बताओ कहां चला जाए, क्या देखना पसंद करेंगे ?'' मैंने आगन्तुक की इच्छा का सम्मान करते हुए हॉस्पिटेलिटी दिखाने की कोशिश की।

''परी, मेरा 'तुम्हारे अलावा कोई पूर्वाग्रह नहीं है। मैं तो यहां सिर्फ 'तुमसे' मिलने आया हूं, जो 'तुम्हें' पसंद हो वही दिखाओ।''.....।'' तुम्हारे, तुमसे और तुम्हें शब्दों पर अतिरिक्त जोर देते हुए उसने कहा।

''मुझे शाम बहुत पसंद है, पर शाम में अभी देरी है। उसके अलावा.....उसके अलावा मुझे जल राशि बहुत पसंद है। (मैंने थोड़ा सोचते हुए जवाब दिया।)

फिर चाहे वह कच्ची पक्की सीमाओं में बंधी तालाबों की नियंत्रित जल राशि हो या पहाड़ों से मुक्त होने का संघर्ष करती झरनों की अनियंत्रित जल राशि। नदियां तो मेरी आराध्य हैं।'' गंध और छूअन के मोहपाश और उसके आग्रह को ग्रहण करते हुए मैंने किसी सूत्रधार की तरह अपनी बात आगे बढ़ाई।

''तब तो यहां की नदी से ही मिला जाए.....'' वह मेरा रुख समझ चुका था।

मैंने गाड़ी स्टार्ट की और सर्कुलर रोड से होते हुए हम पीरखोह मंदिर के पास पहुंच गए। यहां पहुंचकर मैंने गाड़ी रोक दी। और एक रचनाकार की सौंदर्य दृष्टि उसमें खोजने की कोशिश करते हुए सवाल किया।

''आपको नदी सिर्फ देखनी है या उससे मिलना भी है.....''

''मैं जीवन को समग्रता में जीना चाहता हूं, इस लिहाज़ से नदी से मिलना ही उचित रहेगा। देखना तो कभी भी हो सकता है।'' किसी दार्शनिक की तरह उसने भी जवाब दिया।

''तो फिर तैयार हो जाइए आगे का सफर पैदल ही तय करना पड़ेगा।'' गाड़ी से उतरते हुए मैंने उसे आगे की राह के लिए तैयार किया।

कुछ रास्ता पक्की सड़क का था और आगे कच्ची पगडंडी शुरू हो चुकी थी। तवी से पत्थर ढोने वाले खच्चरों के पैरों के निशान से पगडंडी अलग पहचानी जा रही थी। यहां से होते हुए दोनों तवी के किनारे पहुंच गए।

मौसम बसंत का था पर तवी पर उदासी छाई हुई थी। उसे भी किसी का इंतज़ार था शायद.....किनारे उससे दूर होते जा रहे थे।

''परी.....यही नदी है तुम्हारे पास ?'' अब तक उसका मेरे लिए संबोधन 'आप' से बदलकर 'तुम' हो चुका था।

''क्यों.....क्या आपको यह अच्छी नहीं लगी। एक्चुअली बारिश नहीं हुई है न बहुत दिनों से.....आपको नहीं पता, यह हमारे शहर की लाइफ है।'' मैंने हैरान और लगभग आहत होते हुए अपनी और नदी की स्थिति स्पष्ट करनी चाही। परंतु वह पत्थरों से अटे उस थोड़े से पानी को नदी मानने को तैयार नहीं था।

''होगी, ज़रूर होगी, परंतु हे देवी, मेरी आत्मा नहीं मानती कि मैं इसे नदी कहूं.....'' उसने मज़ाक किया पर मुझे चुभ गया।

''नदियां सिर्फ देखने के लिए नहीं होतीं अनुभव, वे मानने के लिए भी होती हैं। एक ही नज़र में तुम इसके होने और न होने का फैसला कैसे कर सकते हो। अभी तो तुम्हारी इससे पहली ही मुलाकात है.....।

मैं किसी परदेसी को यह अधिकार भी नहीं देती कि वह मेरी नदी का मजाक उड़ाए।''

''तुम नाराज़ क्यों हो रही हो, पर सच मानो अगर यह वाकई नदी है तो इसकी हालत बहुत दयनीय हो गई है। यह सूखने लगी है, इसे नए जीवन की जरूरत है। अगर लाइफ लाइन है तो कुछ सोचो इसके बारे में।''

''जानते हो अनुभव प्रीत और नदी कभी नहीं सूखते। ये तो बस कुछ एनवायरमेंटल इफैक्ट्स होते हैं जिससे वे सूखी हुई दिखने लगती हैं। घटाओं के पहाड़ों से टकराने-भर की देर है, कि नदियां मदमस्त हो जाती हैं। मतवाली लहरें मिलन का वह संदेशा दूर-दूर तक पहुंचा आती हैं। तभी तो सारी सभ्यताएं नदियों के ही किनारे फली-फूलीं।'' मुझ पर दर्शन और आत्मीयता हावी होने लगी थी।

''पर मुझे लगता है कि प्रीत में स्थायित्व भी होना चाहिए। तुम्हारे पास कोई ऐसी नदी नहीं है जो स्थायी हो.....जो अब तक सूख न पाई हो, वो तुम्हारे बताए एनवायरमेंटल इफैक्ट्स के कारण।''

तुम्हारे पास सौंदर्य दृष्टि तो है अनुभव पर आत्मिक अनुभूति नहीं है। सहसा मेरे भीतर के मेहमान नवाज़ ने मुझे रोक लिया।

''खैर छोड़ो, चलो तो तुम्हें प्रेम के अमर प्रतीक के पास लिए चलते हैं। कितनी ही पीढ़ियां गुजर गई, पर वह अब तक नहीं सूखी। लेकिन पहले कुछ खा लिया जाए। वहां पहुंचने में थोड़ी देर लगेगी।'' हम दोनों अभी एक-दूसरे के साथ और समय बिताना चाहते थे तवी और उस पर पसरी उदासी को पीछे छोड़ते हुए हम दोनों आगे बढ़ गए।

हम दोनों ने पहले लंच किया और फिर हम अखनूर की तरफ निकल पड़े। दोनों तरफ पेड़ों से घिरा रास्ता अनुभव को भला लग रहा था। ठंडी शीतल बयार उसे सुखद अनुभूति का निमंत्रण दे रही थी।

''वाह.....इसे कहते हैं नदी.....'' दूर पुल पर से चिनाब की लहरें देखते ही वह अभिभूत हो गया।

''कौन सी नदी है ये''

''चिनाब.....दरिया चिनाब'' मैंने पुरज़ोर गंभीरता, आत्मीयता और बड़प्पन से जवाब दिया। जैसे कोई अपनी सयानी हो रही बेटी की प्रशंसा सुनकर उसका नाम बताता है।

मेरे बाल बार-बार उड़कर मेरे गालों पर आ रहे थे। चिनाब की लहरें मेरे पास रखे रजनीगंधा की सुगंध और छूअन से जल्द से जल्द मिलने को आतुर हो रहीं थीं। मैंने उन्हें नज़रों में भरकर गुनगुनाना शुरू किया।

**''सोहनी चिनाब दे किनारे ते पुकारे तेरा नाम.....आजा.....आजा.....''**

मेरा गला बहुत अच्छा नहीं था पर फिर भी गुनगुनाते हुए इस सुंदर दृश्य में सुर की संगत बन पड़ी।

''क्यों है न खूबसूरत.....''

''सचमुच बहुत खूबसूरत है। ऐसा दरिया सामने हो तो कौन न डूब जाए।''

''शुभ-शुभ बोलो, डूबने-वूबने की बातें न करो। इसकी इन्हीं आकर्षक लहरों में ही कहीं शोक भी डूबा है।'' मैंने पिछले दिनों हुई ट्रक और बस दुर्घटनाओं के बारे में बताते हुए उसे चिनाब से सावधान रहने की भी हिदायत दी।

किनारे तक पहुंचते हुए शाम घिर आई थी। चिनाब की सुरमई लहरें शाम को आईना दिखा रही थी। चिड़ियों के कलरव ने मेरा साथ दिया और दृश्य अपने पूरे शबाब पर नव आंगुतक को रिझाने लगा। ऐसे माहौल में कविता से बेहतर और क्या हो सकता था–

*शाम ज़रा तुम ऐसे ढलको*
*कि रातें ग़ज़ल हो जाएं*
*रोम रोम सब शीशमहल*
*और हम तुम अवध हो जाएं*
*लिख दूं होंठों पर कविताएं*
*मिलना तेरा निःबंध हो जाए।*

दुपट्टे को संभालते हुए, उड़ रहे बालों को कानों के पीछे करते हुए मैंने शायराना मूड में कहा।

''वाह.....वाह.....वाह.....वाह.....तो शायरी भी कर लेती हैं आप।'' मेरी टूटी-फूटी पंक्तियों पर दाद देते हुए उसने एक काबिल श्रोता होने का फर्ज अदा किया।

''वाकई बहुत आकर्षक है''

''क्या'', मैंने सकुचाने और इठलाने के मिश्रित भाव के साथ सवाल किया।

''दरिया भी और उसकी शायरी भी। नदी और प्रीत के तमाम तत्व हैं इन दोनों में, पढ़ने के साथ-साथ लिखने का भी शौक है आपको।''

''अरे नहीं, यूं ही कहीं किसी किताब में पढ़ी थीं।'' अपनी ही पंक्तियों को चुराया हुआ बताकर मैंने बचने की कोशिश की।

''वो भूरी दीवारों का खंडहर कैसा है.....'' शाम और हमारी मुलाकात दोनों एक दूसरे का हाथ थामे आगे बढ़ रहे थे।

''उसे अखनूर का किला कहते हैं। कहते हैं कि कभी राजा विराट की नगरी हुआ करती थी अखनूर। और अज्ञातवास के दौरान पांडवों ने यहां शरण ली थी। यहीं पर तो अर्जुन उत्तरा को नृत्य सिखाया करते थे।''

''और अब कोई उत्तरा आती है यहां पर पायल की रुनझुन लिए.....''

उसने फिर मुझे बहलाने की कोशिश की और मैंने हल्की मुस्कान के साथ बात टालने की।

हम फिर चिनाब की तरफ आ रहे थे।

''क्या हम इसके किनारों तक जा सकते हैं, बहुत विशाल लगती है ये''

''विशाल है और खतरनाक भी, जो इसमें डूबा आज तक नहीं मिला।''

''पर कच्चे घड़े पर टिका विश्वास तो पक्का था।''

''इसलिए तो अमर हो गया।''

हम और हमारे सवाल-जवाब चलते हुए चिनाब के किनारे तक पहुंच गए। यह जिया पोता घाट था।

''क्या यहीं सोहनी-महिवाल एक हुए थे ?''

''नहीं वह हिस्सा अब पाकिस्तान में है। सरहदों ने सब कुछ बाँट लिया, पर नदियां कहां बंटेंगी चलो घाट पर कुछ देर बैठते हैं। शाम होने लगी थी, चिनाब के किनारे ठंडी हल्की बयार में हम दोनों ने ढेरों बातें की। रजनीगंधा के फूल इन बाती में महक घोल रहे थे।

''मैं तुम्हारे लिए अपनी किताब भी लेकर आया हूं। तुम इसे पढ़ना, मुझे जानने में तुम्हें और मदद मिलेगी।''

''इतना ज्यादा जानकर भी क्या करना है,'' मैंने अपने आप से ही सवाल किया। फिर संभलते हुए उसे वापस दृश्य में खींच लाई।

''जानते हो इस घाट का नाम जिया पोता घाट है। यहीं महाराजा रणजीत सिंह ने जम्मू के महाराजा गुलाब सिंह का राजतिलक किया था। वह राजतिलक भी बड़ा अनूठा था।

महाराजा रणजीत सिंह ने महाराजा गुलाब सिंह पर नीचे से ऊपर की ओर नहीं बल्कि ऊपर से नीचे की ओर तिलक किया था।''

''उल्टा तिलक, पर क्यों'' यह पूछते हुए उसकी आंखों में बच्चों जैसी उत्सुकता थी। मैंने उनमें गुलाबी अंगुलियां ढूंढ़नी चाहीं, पर उनमें चिनाब में डूबता नारंगी सूरज नजर आ रहा था।

डूबते सूरज को उसकी आंखों में देखकर मैंने जवाब दिया, ''इस तिलक के साथ ही उन्होंने महाराजा गुलाब सिंह को यह संदेश दिया कि तुम एक पहाड़ी राज्य के राजा हो। तुम्हारा साम्राज्य इतना विस्तार पाए कि वह पहाड़ से पाताल तक जाना जाए।''

''अरे वाह, इंटेलीजेंट महाराजा थे रणजीत सिंह''

''हां और महाराजा गुलाब सिंह ने यह कर दिखाया।''

''तब तो मेरा राजतिलक भी यहीं होना चाहिए.....'' कहते हुए अनुभव खिलखिला कर हंस पड़ा।

उसकी हंसी लहरों की तरह अनुशासनहीन थी।

''छोड़ो राजतिलक, तुम्हें उससे क्या। तुम तो शब्दों के बाजीगर हो, उसी में कमाल दिखाना। वो अपनी किताब तो दो ज़रा।''

''क्यों क्या अभी पढ़ने का इरादा है, मैं बहुत बोर कर रहा हूं क्या ?''

''दो ना.....तुम सवाल बहुत पूछते हो।''

''वह ब्रीफकेस में है, उसके लिए वापस गाड़ी तक जाना पड़ेगा।''

''तो जल्दी जाओ। ये लो चाबी, मैं तुम्हारा यहीं इंतजार करती हूं।''

थोड़ी ही देर में अनुभव ने किताब लाकर मेरे हाथ में पकड़ा दी।

मैंने किताब को पहले माथे से छुआ, फिर उसके हाथों से और फिर घाट की सीढ़ियां उतर कर उसे चिनाब में प्रवाहित कर दिया।

''ये क्या किया परी ?'' उसने अचम्भित दृष्टि से मेरी ओर फिर उस बहती हुई किताब की तरफ देखा।

''तुम लेखक हो न, तख्तो ताज का क्या करोगे । मैं चाहती हूं कि तुम्हारी सृजनात्मकता दूर-दूर तक फैले। चिनाब की लहरों की तरह, देश और युगों की सीमाएं तोड़ती हुई।

इसलिए मैंने तुम्हारी रचनाएं चिनाब को समर्पित कर दी हैं। अब इसकी लहरें जहां भी जाएंगी तुम्हारी रचनाओं की खुशबू वहां तक फैल जाएगी।''

उसकी सुनहरी किताब जलपाखी की तरह तैरती हुई दूर निकल गई।

''वाह.....कमाल हो परी, मुझे कभी ये आइडिया क्यों नहीं आया।'' तैरता हुआ जलपाखी अपने साथ लेखकीय डेकोरम भी बहा ले गया। उसके हृदय का हल्कापन उसकी आंखों से बाहर आ गया और वह कुछ ही क्षणों में उसके पूरे चेहरे पर फैल गया।

''चलो हम दोनों भी इसमें कूद जाते हैं, फिर हम भी अमर हो जाएंगे।''

''दिमाग खराब है क्या तुम्हारा, अगर ये मज़ाक है तो दोबारा मत करना।'' मैं चिनाब की लहरों से जितना प्यार करती थी उनसे खौफज़दा भी उतनी ही थी।

''मज़ाक नहीं, मैं सच कह रहा हूं।

मैं तुम्हारे साथ रहना चाहता हूं परी

और तुम सीमाओं में बंधी हो''

सच बताओ क्या तुम्हारा कभी मन नहीं करता कि एक बार मेरे गले लग जाओ.....''

अनुभव के इस सवाल के साथ ही आसपास के सभी दृश्य थम गए।

''.....चुप, फिर वही चुप.....कुछ तो जवाब दो।''

''मेरे पास कुछ नहीं है अनुभव तुम्हें देने के लिए।'' सात दरवाजों के भीतर से ये कुछ शब्द बाहर आ गिरे।

''देना.....देना.....देना.....जाने औरतों को क्या आदत होती है सिर्फ देते रहने की, जैसे उन्हें तो कुछ लेना ही नहीं होता।''

''मतलब.....?'' सवाल था या ताना, पर जो भी था मेरे दिल में नश्तर उतार गया।

''मतलब कुछ नहीं। जाओ कुछ नहीं चाहिए तुमसे। तुम बंटी हुई हो, अभी मुक्त नहीं हो पाओगी।''

''नहीं कुछ तो है, तुम कुछ तो कह रहे थे। बहुत आसान होता है तुम्हारे लिए कुछ भी कह लेना। पर मेरे लिए नहीं.....मैं सीमाएं नहीं लांघती अनुभव। तुम मेरी भावुकता का गलत अर्थ लगा रहे हो।''

''तुम मुझे नहीं समझ पाए, नदी को क्या समझोगे,'' कहते हुए चिनाब की लहरें मेरी आंखों से बहने लगीं।

हम दोनों के बीच खामोशी पसर गई।

तभी मोबाइल बजने लगा।

.....मोबाइल की रिंग टोन ने माहौल कुछ बदला। फिर भी मैं फोन सुनने की स्थिति में नहीं थी। पहले मैंने उसे काट देना चाहा पर फोन वैभव का था।

आंसुओं का खारापन अपनी आवाज से छिटकते हुए मैंने सामान्य होने की कोशिश की और कॉल रिसीव की।

''हां, हैलो''

''.....कहां हो सीमा, मां कह रही थी कि कोई तुमसे मिलने आया है, दोपहर तक लौट आओगी। अब शाम होने लगी है। कहां हो तुम ?''

''हां, बस उन्हीं के साथ हूं, थोड़ी देर में पहुंचती हूं।''

''माली आया है, तुमने उससे रजनीगंधा का कोई पौधा मंगवाया था क्या ?''

''हां मंगाया था, क्या ले आया.....?''

''लाया तो है, पर कहां लगवाना है, लॉन में तो कोई जगह खाली है ही नहीं।''

''एक गमला है न खाली, वहीं रखा है, उसमें लगवा दीजिए। मैं बस थोड़ी देर में पहुंचती हूं।''

''गमले के लिए तो उसने पहले ही मना कर दिया.....कह रहा है गमले में नहीं हो पाएगा। इसे रख रखाव चाहिए। अगर लगाया भी तो फूल बहुत छोटे आएंगे।''

''कैसा माली है, ये क्या जिनके पास लॉन नहीं होता, वो फूलों का शौक नहीं रख सकते। उससे कहो, ले जाए वापस अपना रजनीगंधा, मुझे नहीं चाहिए।''

ठीक है कह देता हूँ पर तुम कब आओगी। शाम हो गई है, मंदिर में जोत भी करनी है। मां नाराज हो रही है।''

''हां बस थोड़ी देर में पहुंच रही हूं।'' कहते हुए मैंने फोन काट दिया।

''सॉरी, वो उनका फोन था।'' घर के लॉन से वापस चिनाब के किनारे पर लौटते हुए मैंने कहा।

''नो इट्स ओके।''

''अब मन ठीक है न आपका ?''

''हां, बिल्कुल। पर सचमुच मेरे पास कुछ नहीं है तुम्हें देने के लिए।''

''अरे कहा न कुछ नहीं चाहिए तुमसे।''

''पर मुझे कुछ चाहिए तुमसे।'', कहते हुए मैंने उसका हाथ पकड़ लिया। उसकी छुअन गुनगुनी थी।

''कहो, क्या चाहिए।'' उसने सहलाते हुए सवाल किया।

''कुछ नहीं, बस तुम्हारी मित्रता चाहती हूं। मैं नहीं चाहती कि हमारा संबंध कोई कटु मोड़ लेकर खत्म हो। मैं चाहती हूं कि आप हमेशा मेरे मित्र बने रहें।''

मेरे हाथों को और मज़बूती से पकड़ते हुए उसने लंबी सांस ली और कहा–

''जाओ किया वादा, अनुभव एक बार जिससे वादा करता है, जीवन भर उसकी कलाई नहीं छोड़ता।

तुम भले न आओ, पर जब भी मुश्किल में होगी मुझे अपने सामने खड़ा पाओगी।''

''अब तुम लौट जाओ अनुभव। मेरे पास तुम्हें देने के लिए ही नहीं, तुम्हारा दिए कुछ सहेजने की भी जगह नहीं है।'' कहते हुए मैंने रजनीगंधा के फूल वापस अनुभव के हाथों में थमा दिए।

''घर चलने को कहूंगी तो तुम मानोगे नहीं, यहां चिनाब के किनारे पर पास ही में एक फकीर की कुटिया है, तुम चाहो तो रात वहां गुजार सकते हो। सुबह तुम्हारे जाने का सब बंदोबस्त हो जाएगा। और कुछ दिन ठहरना चाहो तो.....मना नहीं करेगा फकीर.....लहरों की भाषा पढ़ने में माहिर वह तुम्हारे मन को कुछ शांति देगा। अब मुझे इजाजत दो.....मुझे अपने मंदिर में जोत जगानी है। मेरा परिवार मेरा इंतजार कर रहा है।''

''जा रही हो परी ? जाते-जाते मुझ पर एक अहसान करोगी ?'' सब कुछ जानते हुए भी उसने सवालों का एक जोड़ा मेरी तरफ बढ़ा दिया।

''हां कहो न, मेरे वश में हुआ तो जरूर करूंगी।'' हारे हुए योद्धा की तरह मैंने फिर से अपने आप को संभालते हुए कहा।

''ये फूल, ये खुशबू मैं तुम्हारे लिए लाया था, तुम्हारे बिना मेरे लिए इनका कोई अर्थ नहीं। इन्हें भी यहीं चिनाब में बहा दो, मैं मान लूंगा कि मेरा सपना अमर हो गया। और यह मुलाकात भी।''

मैंने इस मुलाकात की उसकी अंतिम इच्छा को पूरे हृदय से सम्मान किया। रजनीगंधा के फूल चिनाब में बहाकर मैं अपने घर लौट आई। घर आकर मंदिर में जोत जगाई। पीले दिन, पीली उदासी और आते हुए उसके चेहरे का पीलापन सब जोत में उतर आया। माता की लाल ओढ़नी पर लगा पीला गोटा मुझे आज से पहले कभी इतना पीला नहीं लगा था। लगा कि ये मेरे जीवन की लालिमा को निगल लेगा।

मैंने पीलेपन को चुनौती देते हुए आरती की थाली में रखी कुमकुम में अंगुली डुबोई। मां दुर्गा की मूर्ति के ममतामयी चेहरे को निहारते हुए उसके माथे पर टीका लगाया। मुझे याद आया शून्य मस्तक से पूजा नहीं करनी चाहिए, आज मैं जल्दबाजी में बिंदी लगाना ही भूल गई थी। एक और अंगुली डुबोकर रोली से मैंने अपने माथे पर गोल बिंदी बनाई और बची हुई रोली को मांग में जगह दे दी।

जीवन का चरखा अपने उसी ताल से दिन-रात कात रहा था। जकड़न भरी आवाज़ से मैंने यथासंभव दूरी बना ली। कभी कभार अनुभव का फोन आता, पर दोनों ओर से औपचारिकता का अंश अधिक रहता। मित्रता का भाव दर्शाते हुए वह मेरे परिवार, मेरी दिनचर्या के बारे में भी एक-आध सवाल पूछ लेता। और मैं उसी भाव से उनका एक-आधा उत्तर दे देती।

हमारी शादी को तीन साल हो चुके थे। आज उसी की पार्टी थी। कितने खुशनुमा थे ये तीन साल। वैभव ने कभी किसी चीज की कमी महसूस ही नहीं होने दी। फिर भी इन्हीं खुशनुमा दिनों की यादों में एक याद चिनाब के किनारे की शाम की भी थी। नारंगी सूरज के ढलने के बाद अनुभव के चेहरे पर उतरे पीलेपन की भी थी। उसी याद में एक अंश रजनीगंधा के फूलों का भी था। मेरे घर के लॉन में आज भी रजनीगंधा का कोई पौधा नहीं था।

''बड़ा रखरखाव चाहता है, गमले में पूरा नहीं खिल पाएगा यह फूल।'' और मेरे पास कोई खाली जगह नहीं थी। लॉन की तरफ निहारते हुए मैंने अपने आपसे कई सवाल किए और खुद ही खुद को असद इकबाल की तरह दिलासा दी।

मैं भी पता नहीं बैठे-बैठे क्या सोचती रहती हूं, खाली दिमाग शैतान का घर।

आज हमारी वेडिंग एनीवर्सिरी है और मैं आज भी न जाने क्या-क्या सोच रही हूँ।

शाम की पार्टी की तैयारी करते हैं।

तभी मोबाइल की घंटी बजने लगी, स्क्रीन पर अनुभव का नाम टिमटिमा रहा था।

''हैलो''

''जी नमस्कार''

''नमस्कार, कैसी हैं आप ?''

''अगर मैं गलत नहीं हूं तो शायद आज आपको वेडिंग एनीवर्सिरी है ?'' उसने शंका दूर करने की चेष्टा से सवाल किया। पर उसे कैसे मालूम, मुझे संदेह हुआ। (उससे बात करते हुए मैंने उसे न जाने क्या-क्या बोल दिया था मुझे खुद याद नहीं था।)

''जी नहीं आप बिल्कुल गलत नहीं हैं। आज ही हमारी वेडिंग एनीवर्सिरी है।''

''हमारी तरफ से आपको और वैभव जी को बहुत-बहुत शुभकामनाएं। मैंने सोचा था कि आप दोनों के लिए कोई तोहफा खरीदूं, पर फिर लगा पता नहीं आप लेंगी भी या नहीं, हमारी दी हुई चीजों के लिए तो आपके पास जगह ही नहीं होती।'' इस बार उसके ताने में बच्चों जैसा खिलंदड़पन नहीं था। उसमें मातमी गंभीरता थी।

''नहीं ऐसी कोई बात नहीं है, तोहफे की भला क्या जरूरत। दोस्तों की शुभकामनाएं ही बहुत होती हैं। थैंक यू सो मच।'' कहते हुए मैंने फोन रख दिया। फोन तो रख दिया पर उसकी मातमी आवाज का ताना मेरी देह से चिपक गया। इससे छूटने का जब कोई जतन मुझे न सूझा तो मैंने बाथरूम में जाकर शॉवर लेना ही बेहतर समझा। शॉवर की नन्हीं बूंदें बेरोकटोक मुझ पर बरसने लगीं। मैं आंखें बंद किए उनमें डूब जाने की कोशिश कर रही थी। मेरी आंखों

के सामने फिर जलपाखी की तरह लहरों पर सवार उसकी किताब तैरने लगी। मैंने चेहरे को झटकते हुए शॉवर बंद कर दिया और खुद को टावल से पोंछते हुए नाइटी पहन ली। नाइटी का सलेटी रंग मुझे बार-बार न जाने क्यों तवी के उदास पत्थरों की याद दिला रहा था।

मां ने कितनी बार टोका था मुझे इस तरह के रंग खरीदने पर। उनका मानना था कि खूबसूरत रंग पहनने से मन खिला खिला रहता है। और सौभाग्यवती स्त्रियों को इन उदास रंगों से दूर ही रहना चाहिए।

मां की सलाह याद आई और अब तक शाम भी हो चुकी थी। पार्टी के लिए तैयार होना था। मैंने अपना ध्यान वैभव की दी हुई खुशियों की तरफ लगाने की कोशिश की। याद आया उनका दिया तोहफा तो मैंने अब तक खोला ही नहीं। कितनी लापरवाह हो गई हूं मैं। सोचते हुए पैकेट खोला तो उसमें से एक खूबसूरत साड़ी निकली। साड़ी पर लगे सितारों की जगमगाहट मुझे वैभव के प्रेम में डुबोने-उतारने लगी।

मुझे और वैभव दोनों को ही सादगी बहुत पसंद थी, फिर भी मैं आज खूब मन लगाकर तैयार हुई।

घर के बाहर से वैभव ने गाड़ी का हॉर्न बजाना शुरू किया, मैं झट से पर्स उठाकर गेट से बाहर आ गई।

और कार का दरवाजा खोलते हुए वैभव के साथ वाली अगली सीट पर बैठ गई।

वैभव ने नजर भरकर मुझे देखा ''लुकिंग स्मार्ट.....नारंगी रंग वाकई तुम पर बहुत खिलता है।''

दुर्घटना से बचने के लिए जैसे अचानक ब्रेक लगता है मेरी तंद्रा उसी वेग के साथ टूटी, ''क्या ये साड़ी नारंगी रंग की है ?'' गाड़ी के शीशे में देखते हुए मैंने अपने आप से सवाल किया। वहां मुझे अनुभव की आंखों में डूबता हुआ नारंगी सूरज दिख रहा था।

सूरज डूब चुका था। शहर के सबसे शानदार पार्टी लॉन में रखी थी वैभव ने मेरे लिए पार्टी। तामझाम के हिसाब से बड़ी शानदार पार्टी कही जा सकती थी। किसी को भी बांध लेने के तमाम इंतजाम थे इस पार्टी में, पर मुझे यहां मौजूद हर रंग चिनाब की शाम की तरफ धकेल रहा था। और डूबता हुआ नारंगी सूरज तो मुझसे बिल्कुल लिपटा हुआ था।

सुनहरी रोशनी में हजारों-हजार जलपाखी तैरते मालूम हो रहे थे। ये कौन-सा चक्र था जो मेरे आसपास घिर आया था। मैं इससे बाहर क्यों नहीं हो पा रही थी ? सोचते-सोचते चिनाब के किनारे के फकीर के शब्द बार-बार मेरे मन के दरवाजे पर दस्तक देने लगे।

''सुन्ने दी पालकी इच तुस इन्ने दुआस की

चेते ते नेईं आवै करदे कन्ने दे ओ कोकलू''

मैंने पर्स से मोबाइल निकाला, अनुभव का नंबर डायल किया। लगातार रिंग जाती रही, पर उसने कॉल रिसीव नहीं की। फोन कट गया।

मैंने नंबर फिर डायल किया, फिर वही रिंग जाने का लंबा सिलसिला, फिर किसी ने कॉल रिसीव नहीं की। फिर फोन कट गया। मैंने झुंझलाकर मोबाइल वापस पर्स में रख लिया।

मेरे भीतर के जल थल की हलचल से अनजान वैभव ने मेरा हाथ पकड़कर डासिंग फ्लोर पर खींच लिया.....और हम खूब नाचे।

इस बीच एक अजब बीमारी ने मुझे घेर लिया था। मेरे चारों तरफ सिर्फ एंक ही शख्स था, हर तरफ उसी की गंध और उसी के रंग थे। जिन्हें छू पाना मुश्किल था, और उनसे बच पाना और भी ज्यादा मुश्किल।

मेरी और वैभव की दुनिया में अनुभव ने ख्वामखाह डेरा डाल लिया था। जैसे सविनय अवज्ञा आंदोलन पर हो।

रसोई में जाकर कुछ बनाने लगती तो उसका दो अंगुलियां चाटते हुए चटखारे लेना याद आ जाता। फिर वही बनाती जो उसे पसंद था। आटा गूंथते हुए उसकी हथेलियों की गुनगुनी पकड़ याद आ जाती।

वैभव के लिए खाना परोसती तो अनुभव का चेहरा सामने आ जाता।

'पता नहीं उसने अब तक कुछ खाया भी होगा या नहीं।'

खाली वक्त मिलते ही अनुभव की लिखी किताबें पढ़ना शुरू कर देती। उसकी किताबों के सब चरित्र मुझे अपने से जान पड़ते, किसी का प्रेम मुझ जैसा लगता, किसी का अहंकार। किसी के भाव मुझ जैसे लगते तो किसी का अंदाज। कई बार तो उन्हीं की तरह मैं व्यवहार भी करती।

शाम को लैपटॉप पर उसकी साइट देखती, फेसबुक पर उसका चेहरा देखकर उसके फेन्स की लिस्ट और कमेंट पढ़ती। अजब सतरंगी दुनिया थी, खुद की बुनी-गुनी।

आज भी पूरी शाम मैंने अनुभव को खूब याद किया। इतना कि मुझे पता नहीं चला कि रात कब हो गई। सातवीं बार उसका उपन्यास पढ़ने की कोशिश कर रही थी। तब जबकि मुझे याद हो चुका था कि कब, कौन सा पात्र क्या कहेगा और क्या करेगा। पात्र जब किताबों से निकल कर मेरे दिमाग पर चढ़ बैठते तो मैं क्षितिज में निहारने लगती और घंटों निहारती ही रहती.....

''अरे आप आ गए.....'' वैभव ने मेरे कंधे को हिलाते हुए मेरा ध्यान भंग करने की कोशिश की तो मैंने चौंकते हुए कहा।

वैभव के घर पहुँचने पर मैं हैरान रह गई और मुझे अंदाज़ा हुआ कि मैं कितनी देर से यूं ही अनुभव की किताब हाथ में लिए बैठी हूं। शाम की चाय भी ठंडी होकर पानी हो चुकी थी।

''पानी'' मुझे याद आया घर लौटते ही वैभव सबसे पहले नींबू पानी पीते हैं। मैं झट से रसोई में वैभव के लिए नींबू पानी बनाने चली गई।

'समय क चरखा आजकल दिन कातता नहीं था, चबा रहा था। पता ही नहीं चलता था कि कब दिन ढला और कब रात हो गई।' काम खत्म करने के बाद बैडरूम में आते हुए मैंने महसूस किया।

मैं बार-बार मोबाइल देखती, इस लालसा के साथ कि वह फोन करेगा और पूछेगा 'कैसी हो परी.....' इधर चिनाब वाली शाम के बाद से उसने मुझे एक बार भी 'परी' नहीं कहा था।

बत्ती बुझाकर मैं तकिया खींचते हुए वैभव की बगल में लेट गई। आंखे बंद की तो रजनीगंधा के फूल चांद की तरह टिमटिमाने लगे। आँखें खोली तो कमरे में वहीं घुप्प अंधेरा ठहरा हुआ थ। मैंने फिर आंखें मूंद ली। रजनीगंधा के फूल फिर खिलखिलाने लगे।

वैभव ने प्यार से मेरा गाल सहलाया, मुझे उनमें वहीं गुनगुनी छुअन महसूस हुई जो अनुभव का हाथ पकड़ने के बाद से अक्सर आटा गूंथते वक्त महसूस हुआ करती थी। मैंने फिर आँखें खोलीं, अंधेरे में वैभव की आंखें चमक रहीं थीं। मैंने फिर आंखें मूंद ली। अब उनमें डूबता हुआ नारंगी सूरज दिखाई दे रहा था।

वैभव की दोनों बांहें मुझे चिनाब के किनारे-सी लग रही थीं, जिनके बीच मैं रजनीगंधा के फूलों की तरह बही जा रही थी, साथ में थी अनुभव से मुलाकात की गंध, उस गंध का प्रेम और रस।

उसके चारों तरफ अनुभव के अलावा और कुछ नहीं था, न वैभव, न अंधेरा, न कोई इन्कार।

''क्या तुम्हारा कभी मन नहीं करता कि एक बार मेरे गले लग जाओ।'' सात तालों में बंद, सात रंगों की सात तहों में, सात सूतों में उलझा वह एक सवाल हौले से मेरी देह में सिहरन पैदा कर गया।

वैभव को अपनी बांहों में जकड़ते हुए मैं भरपूर वेग के साथ अनुभव के गले लग गई।

इसी सतरंगी दुनिया में एक रंग मेरे भीतर भी पनपने लगा था। यह किसलयों पर ठहरी ओस की बूंदों की तरह हरा हो सकता था, इसकी हलचल मैं महसूस कर रही थी।

कुछ ही महीनों में मेरे शरीर के भीतर-ही-भीतर उभरता उसका आकार वैभव, मां और मिलने-जुलने वाले और लोग भी महसूस करने लगे थे। सब खुश थे, हमें शुभकामनाएं दे रहे थे पर मेरा मन अशांत था। चिनाब की लहरें मेरा पीछा ही नहीं छोड़ रहीं थीं। अकसर रात में वो मुझे अपने साथ उसी शाम की सैर पर ले जातीं, जहाँ मैंने रजनीगंधा के फूल और वह सुनहरा जलपाखी प्रवाहित किया था।

सब कुछ कहां बह पाया था उस शाम, मेरे बहुत सारे रंग अब भी वहीं ठहरे थे। उन्हीं रंगों से मिलने मैं भी अकसर रात में चिनाब की लहरों के बुलावे पर उठ खड़ी होती थी।

वैभव को यह बीमारी लग रही थी। मां को कोई 'शाय बला'। मां ने मेरे बिस्तर में 'सैती सरियां' के सुनहरे दाने बिखेर दिये। कलाई में दानों की पोटली बनाकर बांध दी। इनका रंग भी जलपाखी की तरह सुनहरा था, मुझे ये भले लगने लगे।

खाने-पीने और खुद से ज्यादा मुझे इन सुनहरी दानों के साथ रहना अच्छा लगता था। इस पर मां और विचलित हो गई। मेरे लिए भी और मेरे भीतर बढ़ते उस नन्हें बीज के लिए भी।

वैभव मुझे खाना खिलाने को कोशिश करते। पर मैं बहुत कोशिश करने पर भी दो अँगुलियों को चाटते हुए चटखारे नहीं लगा पाती। मेरे निवालों से स्वाद भी गायब होने लगा था। मुझे खाने से विरक्ति हो गई।

वैभव मुझे डॉक्टर के पास ले गए। डॉक्टर ने मुझसे बहुत देर तक बात करने की कोशिश की। पर मेरे सुनहरे जलपाखी बिस्तर में रह गए थे, मैं नाराज थी, मैंने डॉक्टर से कोई बात नहीं की।

वैभव ने डाक्टर को बताया कि मुझे पढ़ने और थोड़ा बहुत लिखने का शौक है। डॉक्टर ने मुझे पांच-छह अलग-अलग तस्वीरें दीं और उस पर कुछ लिखने को कहा।

इनमें से एक मां का आंचल पकड़ते किशोर की थी।

दूसरी खिड़की पर कोहनी टिकाए बैठी औरत की।

तीसरी चार बच्चों की

चौथी,

पांचवीं

और छठी।

पर वे सारी तस्वीरें ब्लैक एंड व्हाईट थीं। उनमें कोई रंग नहीं था, न सुनहरा, न हरा, न नारंगी, न गुलाबी। मैं क्या लिखती। मैंने कुछ नहीं लिखा। एक शब्द भी नहीं। मैंने तस्वीरें वापस टेबल पर फैंक दी।

डाक्टर को सूत्र मिल गया। उसने मुझसे डिप्रेशन खोज निकाला और उससे बचने और लड़ने के लिए ढेर सारी गोलियां दे दीं।

इनमें एक गोली नारंगी रंग की भी थी, बिल्कुल उन आंखों में डूबते सूरज जैसी। सैती सरियां के दानों के साथ मैंने नारंगी रंग की गोलियों को भी अपना दोस्त बना लिया। अब वे भी मेरी सतरंगी दुनिया में शामिल थीं। नारंगी गोलियों की एक खासियत और थी। इन्हें खाने के बाद मुझे झट से नींद आ जाती और मेरे सतंरगी दनिया मेरे सामने अपने सारे रंग उंडेल कर सज जाती।

मेरी दुनिया में लहरों की हलचल अब ज्यादा बढ़ने लगी थी। ये कभी चिनाब की लहरों जैसी लगती तो कभी नन्हीं टांगों जैसी। मेरे भीतर कुछ बड़ा 'भला-सा' चल रहा था। मैं उसे लेकर दिन-दिन भर सोयी रहती।

एक रात चिनाब की लहरों में से एक मगरमच्छ अपने पैरों को जल्दी-जल्दी चलाता हुआ निकला उसके पिछले सभी पैर आगे वालें पैरों की संगत कर रहे थे। सभी पैरों ने मिलकर मगरमच्छ को मेरी तरफ धकेल दिया और मगरमच्छ ने अपना पूरा जबड़ा खोलकर मेरी दोनों हथेलियों को अपनी ओर खींच लिया।

मैं चीख रही थी, चिल्ला रही थी, मगरमच्छ का जबड़ा मुझे छोड़ने को तैयार नहीं थी।

''जय बावे दी.....

जय बावे दी.....

जय बावे दी.....

जय बावे दी....'' मां और वैभव मेरी दोनों हथेलियों को अपनी हथेलियों से रगड़ते हुए पुकार रहे थे। मैं इस डरावने स्वप्न पर तेजी से चीख पड़ी थी। मां का 'शाय बला' वाला शक अब यकीन में बदलने लगा था, वे बावा जित्तो से प्रार्थना कर रही थी, कि वे मुझे इस बला से मुक्ति दिलाएं।

मां भी चाहती थी कि मुझे मुक्ति मिले

अनुभव भी चाहता था कि मुझे मुक्ति मिले

फिर मैं क्यों नहीं चाह पा रही थी कि मुझे मुक्ति मिले

क्या ये जरूरी हो गया था कि अब मुझे मुक्ति मिले ?

''कल झिड़ी का मेला है, बावे के मत्था टिकाएंगे तो सब ठीक हो जाएगा।'' एक ही जुमले में मां ने वैभव को सलाह और निर्देश दोनों दे दिया। अब तक दृश्य बदल चुका था। मुझे निगलने वाला मगरमच्छ दृश्य से बाहर हो चुका था। मां, वैभव और उनकी प्रार्थनाएं दृश्य में शामिल हो चुकी थीं। मां ने सैती सरेयों की धूनी मेरे बिस्तर के चारों तरफ घुमाई। नारियल के तेल से मेरे सिर की मालिश की। और मैं सो गई।

अगली सुबह हम सब झिड़ी के लिए निकल पड़े। झिड़ी में लगने वाला कार्तिक पूर्णिमा का यह मेला हर बार की तरह विशाल और शानदार था।

अलग-अलग जगहों से आए हजारों-लाखों लोग साढ़े चार-सौ साल पुरानी पीड़ा का प्रायश्चित कर रहे थे। 'बावे के तालाब' पर नहा रहे लोगों ने अपने चेहरे और अपनी देह पर तालाब की काली मिट्टी पोत रखी थी। कुछ लोग लोहे की 'संगलों' में अपने-आप को पीट रहे थे। उन्हें दुख था कि उनके पूर्वजों ने बावा जित्तो की मेहनत और लहू में डूबी कनक क्यों खाई। सदियां गुज़र गई थीं पर ये दुख, ये पीड़ा, ये प्रायश्चित कम होने की बजाए बढ़ता ही जा रहा था। हर बार प्रायश्चित करने वालों की भीड़ बढ़ती ही जा रही थी। नहाने के बाद वे बावा जित्तो और 'बुआ कौड़ी' के मंदिर में जाते, नाक रगड़ते और उनसे माफी मांगते।

वैभव और मां मुझे भी मंदिर में ले गए। मेरे हाथ में मंदिर में चढ़ाने के लिए प्रसाद और 'बुआ कौड़ी' के लिए खरीदी गई प्लास्टिक की गुलाबी गुड़िया और लाल ओढ़नी थी।

मेरे हाथ जैसी ही ढेरों गुड़ियां और ओढ़नियां 'बुआ कौड़ी' के कदमों में पड़ी थीं। और 'बुआ कौड़ी' अपने पिता बावा जित्तो की अंगुली थामे खड़ी थी।

मैं 'बुआ कौड़ी' की तरफ एकटक देख रही थी, ''कितना शौक होगा न उसे गुड़ियों से खेलने का। आठ साल की उम्र तो होती ही है गुड़ियों से खेलने की। पर कोई भी कौड़ी तभी तक गुड़ियों से खेल सकती है जब तक उसके सर पर मां-बाप का सुरक्षित छत्र रहे। बिना मां की बच्ची ने अपने पिता की रसोई संभाल ली। आठ साल की बच्ची के हाथों से बनने वाली छोटी-छोटी रोटियां कैसी होती होंगी।''

मेरी आंखों के सामने उन रोटियों का आकार और उन्हें पकाने वाले नन्हें हाथों के लिए दुलार उमड़ने लगा।

वो रोटियां भी कहां खिला पायी थी अपने पिता को। मेरी आंखों के सामने अब वह दृश्य आने लगा जब वह अबोध बच्ची अपने पिता की चिता में कूद गई होगी, जमींदार के अन्याय के विरुद्ध। मेरी आंखों से आंसू बहने लगे। प्लास्टिक की गुलाबी गुड़िया मुझे 'बुआ कौड़ी' लगने लगी। मैंने उसे कसकर अपने सीने से लगा लिया, मैं उसे उसके हिस्से का दुलार देना चाहती थी। पर लेने के लिए वह अब बची कहां थी.....मैं खूब रोयी। वैभव ने और मां ने मुझे पकड़कर ड्योढी पर बिठा दिया। मैं सुबकती रही, मैं माफी मांगना चाहती थी उस

नन्हीं बच्ची से जिसका बचपन लालच और अन्याय ने छीन लिया था। न जानें और कितनी ही कौड़ी ऐसी होंगी जिन्हें उनका बचपन नसीब ही नहीं होता, क्या सभी को जान पाते हैं हम.....

मैं रो रही थी,
रोये जा रही थी।
मेरा दुख, मेरी पीड़ा,
अपनी कौम के लिए मेरा प्रायश्चित कम ही नहीं हो रहा था।
मैं रोते-रोते बेसुध हो गई।
कौड़ी की गुलाबी गुड़िया मेरे पास ही रह गई।

मुझे जब होश आया मैं हॉस्पिटल में थी। मेरे आसपास खड़े डाक्टरों और नर्सों को देखकर लग रहा था कि मेरी हालत ज्यादा खराब है। बच्चा बेहद कमजोर था, पर उसने अपनी जगह छोड़ दी थी। मुझे दर्द भी नहीं हो रहा थे। पर बच्चे को जन्म देना जरूरी था। मेरी कोख में अब उसे संभालने की ताकत नहीं रह गई थी। डॉक्टर्स ने ड्रिप लगाई और मुझे 'आर्टिफिशियल पेन' देने की कोशिश की गई। शुरू के दो--तीन घंटे मैं यूं ही बेसुध क्षितिज में निहारती रही, मेरे आसपास के दृश्य मुझ पर कोई प्रभाव नहीं डाल पा रहे थे।

.....आधी रात होते-होते दवाइयां अपना काम कर गईं और मुझे दर्द शुरू हो गया। ये सातवां महीना था इसलिए मां और वैभव अब भी घबराए हुए थे। सुबह के साढ़े चार बजे के बाद मैंने एक बहुत कमजोर पर खूबसूरत बच्ची को जन्म दिया। बच्ची इतनी कमजोर थी कि उसे कपड़े में लपेटने के लिए रूई की परतों का सहारा लेना पड़ा। मेरी हालत अब भी ठीक नहीं थी।

डाक्टर और नर्सों की आंखें बता रहीं थी कि वे भी चाहते हैं कि मुझे मुक्ति मिले।

मेरी गुलाबी गुड़िया नर्स की गोद में थी, वह उसे कपड़े में लपेट कर मेरे पास ले आई। मैंने उसे ध्यान से देखा, उसकी अंगुलियां बिल्कुल गुलाबी थी। उसकी देह से रजनीगंधा के फूलों की खुश्बू आ रही थी और उसकी छोटी-छोटी सी आँखों में डूबता हुआ नारंगी सूरज भी मौजूद था। मेरे सब रंग मेरे पास थे। मैंने नज़र उठाकर देखा अनुभव मेरे सामने था, वैभव और मां दृश्य से गायब हो चुके थे। मैंने हाथ बढ़ाया, अनुभव ने अपनी गुनगुनी हथेली मेरे हाथ में दे दी, मैं उसे गुलाबी गुड़िया के माथे तक ले आई। उसने उसका माथा सहलाया और मुझे मुक्ति मिल गई।

ooo

# बड़े फेर वाला लहंगा

❑ डॉ० पीयूष गुलेरी

''बंग्गां चढ़ाई-लेया, चूड़ियां लेई-लेया, बिन्दियां, मुसकी, नाड़े, परांदे लेयो-जी'' एक लम्बी हाँक में बनजारा यह सब कह गया।

बनजारे के पीछे छोटे-छोटे बच्चे चले आ रहे थे। कुछ लड़कियां जिनके बिखरे हुए बाल, अनधुले मुख पर सज गए थे, भी साथ-साथ दौड़ रही थीं। बनजारे के पीछे एक भारची भी था। उसके मुख पर उल्लास था मानो अच्छी बिक्री हो गई हो आज। अटपटे पत्थरों पर चढ़ कर वह समतल भूमि पर पहुँच गया। एक बड़ा हवादार चौरस मैदान, मैदान में भरा-पूरा पीपल, पीपल के सामने ड्योढ़ी और ड्योढ़ी के बाहिर दो सरू के वृक्ष। बनजारा दो मिनट के लिए ठिठक गया। उसकी इच्छा हुई कि इस घर में जाए। शायद इसीलिए उसने पुनः वही लम्बी हाँक लगाकर अपने पूर्वकथित रटे-रटाए शब्द दोहराए :- बंग्गां चढ़ाई-लेयो, बिन्दिया, मुसकी, नाड़े, परांदे लेयो-जी।''

ड्योढ़ी खुली। एक सुन्दर गोल-मटोल बच्चा बाहिर निकला। अपनी तोतली बोली में बोला :- तांजो-बी-देई-जा बंग्गां। तद्दा-दे त्वांह्जो।'' यह कहकर वह अपनी टोली की ओर सरपट भागा। किन्तु वहाँ केवल किशोरों को देखकर रूआंसा-सा हो गया क्योंकि उसे अपने हमजोली दिखाई न दिये। अचानक राजू ने उसके कंधों पर अपने दोनों हाथ टेक दिये। ज्यों ही उसने पीछे मुड़कर देखा तो गुलाब-सा खिल गया। राजा बोला :- भेया! अतां बड़ा तुत तरीद्देया।''

''अरा असां-बी तरी द्दणा लग्गेयो।''

तीव्र कुतुहल से वे दोनों उसी ड्योढ़ी की ओर भागे।

सत्तो की मां, बहनें तथा पड़ोसिनें बनजारे के इर्द-गिर्द बैठ गई थीं। ढेर सारी रंग-बिरंगी चूड़ियां खरीद कर रख ली थीं और कूहनियों तक चढ़वा भी लीं थीं। सत्तो डंडासे को हाथ में थामें आँगन में आ पहुँचा। खेत में काम करके आया था। पसीने से तरबतर। सारा कुर्त्ता पसीने से भीगा हुआ। मां ने स्नेहमय शीतल नेत्रों से उसकी ओर ऐसे देखा जैसे खरीद करने के लिए कुछ और समय मांग रही हो। सत्तो ने भी आंखों ही आँखों से अनुमति दे दी और बरामदे में बैठकर हाथ-पैर धोने लगा। उसके पैरों की बिवाइयाँ साफ दिख रही थीं। सत्तो

की मां पूरे दस का सामान खरीद कर बनजारे से बोली :- 'भाई! जब मेरे सत्तो का विवाह हो जाए तब आना, अच्छा!'

बनजारे ने हँसकर उत्तर दिया :- 'मैं दूर का थोड़े हूँ बोबो जी! उस घाटी पर ही तो मेरे घर हैं।''

राजो अपने मामे के यहाँ गया हुआ था। उसे अपनी जोड़ी मिल गई थी सरिता। दोनों एक ही उम्र के थे। राजो चौदहवें में जा रहा था और सरिता को तेरहवाँ चढ़ा था। राजो और सरिता संग-संग रहते। खूब खुलकर खेलते। एक दिन खेल-खेल में खूब समां बंधा। उन्होंने टोलियां बाँध कर विवाह वाला खेल खेला। बहुतेरे साथी एकत्र हो गए। दोनों ओर की टोलियों के उस जमावड़े में गुड्डे-गुड़िया का व्याह तो धूमधाम से सम्पन्न हो गया किन्तु गुड़िया की विदाई के बाद सरिता खूब रोई थी। रो-रो कर आंखें सूज गई थीं उसकी। तब सहानुभूति वश राजो ने अपने हाथों से उसके आँसू पोंछ दिए थे।

दूसरे दिन बाल-मण्डली फिर जमी। राजो उतना ही पढ़ा-लिखा था जितनी सरिता को अक्षरों की पहचान नहीं थी। राजो ने सरिता के हाथ पुस्तक देखी तो फट-से बोला :- तुम पढ़-लिख लेती हो क्या ?

'नहीं तो।'
'तो यह पुस्तक।'
'पढ़ना सीखूंगी।'

कुछ समय तो राजो चुप रहा मानो किसी गहरे सोच में डूब गया हो। फिर बोला :- ''मेरा भाई पढ़-लिख लेता है।''

''तो मुझे भी ले चल न वहाँ। पढ़ना लिखना सीख लूंगी।''
''चल पड़ना'' राजो ने उत्तर दिया।
''तुम ले चलो, तो न!'' उसने आँखें मटकाईं।

हाथों तले मुँह दबाकर राजो बोला— ''भाभी बन जाओगी मेरी ?''

''धत.....त्''

उस दिन गुजरिया का खेल रचा गया। सरिता बनी गुजरिया और राजो दूध मोल लेने वाला। पूरा स्वांग रच लिया गया। कमी थी तो एक लहंगे की। सरिता के डबडबाए नेत्र राजो पर टिक गए, कहने लगी :- ''लहंगा नहीं है न मेरे पास।''

लहंगे की कमी राजो को भी खटकी थी। किन्तु अरे यह क्या ? कहीं से हरदेई लहंगा ले आई। लहंगा देखकर सरिता खिल उठी। लाल-सूहे लहंगे ने उसके गोरे-चिट्टे मुख-मंडल पर हल्की-हल्की लालिमा बिखेर दी। खेल जब समाप्त हो गया तो केवल वे दो ही थे।

सरिता ने भोलेपन में पूछा :- बताना भला कैसे रहा खेल ?

''बहुत ही अच्छा। सच .....तुम तो निरी.....''

''चुप भी रहो। बड़े वो हो तुम।'' सरिता बीच ही में बोली।

''लेकिन सच मानो लहंगे ने तुम्हें चार चाँद लगा दिये थे।''

''सच्ची बड़ा शौक है मुझे लहंगा पहनने का। लेकिन.....'' वह कहते-कहते अटक गई।

''लेकिन-वेकिन क्या, तुम्हें लहंगा पहनाया जाएगा। सुन्दर छैल बड़े फेर वाला लहंगा।'' राजो बोला।

सरिता के चेहरे पर उल्लास की लहर दौड़ गई। दूधिया रंग निखर उठा। हल्की लालिमा ने उसे अधिक निखार दे दिया। मानो धवल बादलों में उषा झाँक गई हो।

सरिता ने कहा :- किन्तु सुन लो बड़े फेर का लहंगा पहनूंगी मैं। हाँ .....ऽ बड़े फेर वाला.....।''

''हाँ-तो! वही तो मैंने कहा। लेकिन.....ले.....कि.....न'' वह कहता-कहता रुका।

''लेकिन-लेकिन क्या ?'' उसने तमककर पूछा।

''यही कि तुम मेरी भाभी बन जाओगी न!''

''फिर वही बात ? धत.....त्.....त्'' सरिता ने एक हल्की सी प्यार भरी चपत रसीद करते हुए कहा। मानो हामी की थपकी दी हो।

रात के घने अँधकार में चार जवान एक खाट पर लेटे हुए सिपाही के इर्द-गिर्द बैठे हुए थे। हवा की सरसराहट तेज़ होती जा रही थी। धीमी-धीमी वर्षा ज़ोर पकड़ रही थी। उसकी तेज बौछारों के कारण कोठरी के छेदों से पानी चू पड़ा। चन्द बून्दें लेटे हुए सिपाही की छाती पर आन गिरीं।

सिपाही धीमे स्वर में कहने लगा :- ''उफ्..... फ्.... फ.....मौत के लिए भी अपने देश की मिट्टी नसीब न हो सकी।''

''लेकिन.....लेकिन अपने देश के लिए ही तो यह सब कर रहे हो तुम।'' दूसरे ने कहा।

''ठीक है.....रे ठीक है। यह सब ठीक है। किन्तु थोड़ी ही तो देर थी भारत की सरहद पार करने में। इन आँखों से देख लेता तो इस जीवन की साध यहीं पूरी हो जाती।''

''राजो! राजो! भाई!!! यह समय अधिक बातें करने का नहीं है। तुम्हारे इन ताज़ा घावों से रक्त बह रहा है।'' दूसरे ने समझाते हुए कहा।

राजो की छाती दहल चुकी थी। उसका अंग-अंग ज़ख्मों से भरा हुआ था। पूरे चौदह घण्टे ज़ख्मी होकर भी भूखे शेर की मानिन्द लड़ता रहा था वह। किन्तु आज उसकी आँखें अतीत की किन्हीं अशेष स्मृतियों की गहराइयों में खोई हुई थीं। उसके मन में न जाने क्यों आज बरसों बाद अपनी बचपन वाली उस सरिता को देखने की तीव्र इच्छा जाग्रत हो उठी थी। उधर जंगी तोपों की आवाज़ें सुनकर उसका वीर मन अपनी बड़ी-बड़ी आँखें फेरकर उठ भागना चाहता। किन्तु साथी उसे बार-बार रोक देते। उसका दिल अभी भी दिलेर था। केवल डेढ़ दिन में उसने पूरे सौ दुश्मन मौत के घाट उतार दिये थे।

''जवान! नेता कब आएँगे ?'' राजो ने प्रश्न किया।

''अभी आया ही चाहते होंगे राजो! वे तुम्हारी बड़ी प्रशंसा कर रहे थे। तुम्हारी बहादुरी पर बहुत ही खुश थे सच।'' सिपाही ने उत्तर दिया।

''मैं... मैं....ऽ, अरे! मैं प्रशंसा नहीं चाहता। अपने देश के लिए अरमान हैं मेरे दिल में। स्वदेश के लिए भाव.....औ.....र.....स.....रिता.....'' कहते-कहते रुक गया।

सरिता का नाम सुनकर दूसरा सिपाही जो अभी तक चुपचाप बैठा था। राजों के और करीब सरक आया। उसकी कल्पना किसी दिव्य विचारधारा में खो गई थी। वह राजो के जिस्म को धीरे-धीरे सहलाने लगा। थोड़ी देर बाद बोला : राजो! तुम सरिता कहते-कहते रुक क्यों गए ? कहो न!''

''ओऽ .....ह!.....क्या बताऊँ भाई !!!'' उसकी साँस एक गहरे निःश्वास में परिवर्तित हो गई.....वह कराहया। ''सरिता.....ऽ.....ऽ..... स.....रि.....ता....।'' कहते-कहते वह फिर रुका।

''.....बोलो!....बोलो.....हाँ.....हाँ बोलो न।.....शायद मैं ही तुम्हारी कुछ मदद कर पाऊँ।''

''हैं.....कुछ कर पाओगे.....? अच्छा.....।'' उसे थोड़ा आश्वासन मिला।

राजो ने उसका हाथ अपने हाथों में भरकर आहिस्ता-आहिस्ता थपथपाया और कहने लगा :-''.....तुम कुछ करना.....करना कुछ, अच्छा!!.....तुम्हारा हाथ थामते ही लगा कि जैसे मैं अपने सगे भाई से यह आश्वासन पा रहा हूँ।''

''.....भाई समझो, भाई ही समझो मुझे। हाँ-हाँ अपना भाई, सगा भाई।''

राजो ने बात जारी रखते हुए कहा :-''आज.....आज से पूरे आठ वर्ष पहले मेरा भाई, बड़ा भाई (नयनों में आँसू छलक आए) घर से भाग गया था। हाँ, मामूली से मन-मुटाव को लेकर घर से भाग गया। मेरी बचपन वाली सरिता जिसे मैंने बड़ी साध से अपनी भाभी बनाया था, पति-विछोह से घर में पड़ी तड़पती रही। बेचारी जल बिन मछली.....एक लम्बी प्रतीक्षा उसकी बेचारगी-भरी आँखों में देखता रहा। और भाई ! भाई ऐसा गया कि लौट कर आया ही नहीं।'' राजो की श्वास गति तेज़ हो गई थी।

''फिर.....फिर !!!'' सिपाही ने कौतूहल प्रकट किया।

''ओ.....ह! ओह !!.....अरे ऽऽ.....!!! क्या पूछते हो भाई !!!..... घर का वह मामूली-सा झगड़ा मेरे जीवन के लिए महान अभिशाप नहीं बन गया। भाभी की वह विछोह भरी तड़प और विलाप बस मुझ से यह सब नहीं देखा गया। उसे देखकर मेरी छाती फटी जाती थी। बस.....मैं.....मैं अपने बचपन के वादे को साकार करना चाहता था। सुखी देखना चाहता था न अपनी भाभी सरिता को। बस फिर क्या, नौकरी कर ली फौज की। एक ओर देश-प्रेम और मातृ-भूमि की सेवा का व्रत और दूसरी ओर सरिता भाभी का स्नेहपूर्ण वात्सल्य। मेरे उस उजड़े और निराश बियावान जीवन का सहारा बन गए। किन्तु.....किन्तु मैं भी तो ऐसा फँसा.....ऐसा फंसा कि आज तक उसके पास घर लौट न पाया। कुछ-कुछ आशा बंधने लगी थी अब। वर्मा तो पहुँच ही चुके थे। लेकिन.....लेकिन यह प्राकृतिक विपदा। यह विपरीत मानसून की नई आपदा हमारा मार्ग रोककर खड़ी हो गई।'' कहते-कहते वह एकदम रुका। उसे अपने रिसते हुए ज़ख्मों में दर्द की टीस भरी चुभन महसूस हुई। पास बैठे उस सिपाही की आँखें अश्रु पूरित हो गई। बड़ी हिम्मत करके उसने अपने उन आँसुओं को आँखों में ही सूखा डाला। राजो पर तनिक भी प्रकट नहीं होने दिया। बात जारी रखने के क्रम में वह राजो को 'हू-हाँ' में जवाब देता रहा।

कुछ देर बाद राजो ने एक दीर्घ निश्वास छोड़कर कहा :-''मैं और सरिता (थोड़ा रुका) मेरी भाभी सरिता छुटपन में इकट्ठे मिलकर कई खेल खेलते थे। एक बार खेल-खेल में भाभी ने बड़े फेर वाला सुन्दर लहंगा पहनने की फरमाइश की थी। उफ.....उफ (करवट लेने की कोशिश करता है किन्तु सारे जिस्म के चरमरा जाने से ले नहीं पाता).....ओह....ह.....आह!! अ.....ह!!!'' कहते-कहते उसका कंठ रुंद्ध गया।

राजो को आज सभी पुरानी बातें स्मृतियों में उभर कर ताजा हुई जा रही थीं। कहते हैं मृत्यु से कुछ समय पूर्व मनुष्य की स्मृति स्पष्ट और तीव्र हो उठती है। राजो ने कहा :-.....मैंने अपने बड़े भाई को कहा था कि वह मेरी सरिता भाभी को बड़े फेर वाला एक सुन्दर लहंगा लाकर देगा,.....हं.....ऽ.....लेकिन भाई तो व्याह के कुछ ही समय बाद घर ही छोड़ गया। उसके बाद.....हाय.....हाय.....आऽ.....ह.....मत पूछो.....आगे.....मत.....पूऽ.....छो.....ऽऽ.....।''

''घबराओ नहीं मित्र ! हिम्मत रखो जवान !! देख, तूने मुझे अपना भाई बना लिया है। बनाया है न भाई.....बोलो!!!'' सिपाही ने उसे साहस बँधाते हुए कहा।

''.....अच्छा ऽऽ.....अच्छा! ठीक है.....!!..हाँ तो मैं अपनी सरिता.....लाड़ली सरिता भाभी को सुन्दर बड़े फेर का लहंगा पहने देखना चाहता था। बड़े फेर वाले लहंगे की छवि में.....बताया था न मैंने भाई के घर से भाग जाने के बाद मुझे फौज में भर्ती होना पड़ा। घर में कमाई तो थी नहीं ऊपर से परिवार था पाँच सदस्यों का। नौकरी लगने के बाद घर रुपये भेजे थे मैंने, सरिता भाभी के नाम भी भेजे कि वह एक बढ़िया-सा, सुन्दर सा बड़े फेर

वाला लहंगा बनवा ले.....ब.....ड़े.....फे ऽ.....र.....वाला लहंगा, लेकिन उसने लहंगा बनवाया नहीं शायद। और.....औ.....र मैं कितना बदनसीब हूँ ?''

कुछ देर तक वातावरण निस्तब्ध रहा, एक सन्नाटा, खौफनाक सन्नाटा, राजो का मन भावुक और भारी हो उठा था। उसकी आँखों की कोरों से धीमे-धीमे अश्रु धाराएँ निकलीं जैसे दो विपरीत दिशाओं में दो भावाकुल नदियाँ किसी अज्ञात गंतव्य की ओर प्रस्थान कर गई हों।

उधर पास बैठे सिपाही ने भी अपना मुख घुटनों में छिपा लिया था। उससे भी न रहा गया। और.... राजो के नेत्र टकटकी लगाए किसी अदृश्य प्रतीक्षा में निमग्न था।

कुछ विलम्ब के बाद राजो ने पूछा :- ''अरे आए नहीं नेता अभी ? मुझे एक बार विश्वास तो दिला जाते कि मां, भारत मां अब वन्दिनी नहीं रहेगी।.....और सरिता.....स.....रिता..... हाँ हाँ कहो। कहो न मेरे भाई कि सरिता बड़े फेर वाला सुन्दर लहंगा पहनेगी। बड़े फेर वाला लहंगा।''

''राजो को उस जवान के स्वर में अपने भाई की सी ध्वनि की पहचान हुई। बोला :- ''....यह सब तो हो गया किन्तु बस मैं अपने भाई को ही न मिल सका। यदि इस जीवन में कहीं अन्तिम दर्शन हो जाते तो मैं चैन की मौत मरता। उफ.....फ्.....फ्.....हाय.....हा.....य.....हा.....ऽ.....य। सरिता ..... सरि.....ता..... मेरी सरिता भाभी सदैव सुखी रहे।.....हे मेरे भगवान सदैव सुखी रहे मेरी भाभी .....''

राजो ने फिर पूछा :- अरे नेता नहीं आए अभी भी ? मेरे इस जीवन की प्रतीक्षा की घड़ियाँ अब समाप्त हुआ चाहती हैं.....''

''.....पहुँच गया हूँ जवान! लो आ पहुँचा!! राजो तुम वीर हो। धन्य है तुम्हें जन्म देने वाली जननी। सच्चे सपूत हो अपने माता के। शाबास, वीर शाबास। तुम देश पर कुर्बान हो गए हो। मेरे भाई यही तो वीरगति है।'' सुभाष कोठरी के द्वार पर पहुँचते ही उत्साह भरे स्वर में बोले।

राजो के निर्जीव होते नेत्र एक नए तेज से चमक उठे। उसकी नम आँखें किंचित सजल हो गईं। मानों प्रसन्नता और संतोष की वाणी बोल रही हों।

वह आशा भरे भाव में बोला :-''.....नेता! हमारे प्रिय नेता!! आप मुझे वचन दें कि हमारी भारत माता अब बन्दिनी नहीं रहेगी। इसके पांवों में पड़ी ये परतंत्रता की बेड़ियाँ कट जाएँगी। परतंत्रता के ये बंधन छिन्न-भिन्न हो जाएँगे.....। मेरे प्यारे देशवासी स्वतन्त्र वातावरण की खुली और ताजा हवा में साँस ले पाएँगे.....बस.....ने.....ता.....नेता जी.....मात्र इसी आश्वासन के लिए मेरे यह प्राण इस देह में अटके हुए हैं।''

''मां के बंधन तो तू ने ही काट दिये हैं बहादुर! अब तो उन्हें आमूल ध्वस्त करना शेष है भाई!! उस कार्य का वचन मैं देता हूँ मेरे वीर केहरी!!! शायद कुछ समय पर्यन्त हम फिर इकट्ठे मिल पाएँगे।''

नेता जी सुभाष ने भावुक होते हुए कहा।

''.....और.....औ.....र..... मेरी..... स..... रिता..... सरिता..... भा..... ऽ.....भी'' राजो ने अपनी गर्दन मुड़ाकर पास बैठे सिपाही की ओर देखा।

''सरिता!! अरे! सरिता का जिम्मा मैं लेता हूँ मित्र! बड़े फेर वाला लहंगा पहनाया जाएगा उसे। अरे ...ऽऽ.....! वह अपने खोए हुए पति को भी पा लेगी। लेकिन-लेकिन उसे एक देवर ही नहीं मिल पाएगा रे.....केवल देवर।'' उसकी चीख निकल गई।

राजो ने उस सिपाही के चेहरे पर अपनी आँखे टिका दीं। मानो किसी पुरानी पहचान को पहचान दे रहा हो। उसे उसमें अपने बड़े भाई की सी आकृति लगी। राजो के चेहरे पर शांति और संतोष की रेखाएँ झलकने लगीं।

''.....क्या देखते हो राजो! अरे रा.....ऽ जोऽऽ.....क्या देखते हो ?'' वह फूट पड़ा :- ''मैं ही हूँ.....मैं ही हूँ वह जिसने तुम्हें इतना कष्ट पहुँचाया। वही.....वही नीच, पापी, मूर्ख, फूहड़ सत्तो।'' उसकी घिग्घी बंध चली।

''.....धन्य! धन्य भाग मेरे!! तुम महान हो सत्तो भैया। सत्तो भैया तुम महान हो। भाभी सरिता को सुन्दर अति सुन्दर बड़े फेर वाला लहंगा पहनाना। अच्छा न!! और.....औ..... र.....और तब सरिता भाभी को मेरी याद दिलाकर कहना कि उसे पहना दिया गया है बढ़िया, सुन्दर बड़े फेर का लहंगा दि.....ला, .....नाऽऽ...याद..अ...च्छाऽऽ

फिर संतोष और आनन्द से ज्योतित अपने तेजोमय नेत्रों को नेता जी सुभाष की ओर घुमा कर बोला :-''अच्छा.....अच्छा.....ऽऽ.....और अधिक क्या कहूँ ? आपके दर्शनों से मेरा जीवन धन्य हो गया। मातृभूमि आप सरीखे वीर सपूतों से ही धन्य है.....''

''फिक्र न करो मेरे वीर! रत्ती भर चिंता की बात नहीं है शेरे हिन्द!!! आज़ाद हिन्द फौज के पराक्रमी जवान! तुम चलो.....चलो तुम.....वहाँ हमारे लिए भी स्थान सुरक्षित रखना। ''नेता! हमारे प्राण प्रिय नेता !! भारत के महान सपूत हैं आप। मात्र दर्शनों की प्रबल इच्छा शेष थी। एकमात्र.....अन्तिम इच्छा.....सो पूर्ण हुई, ह....अ, और.....और स.....त्तो....ऽऽ भैया या रखना, हाँ भूल न जाना बड़े फेर वाला लहंगा पहनाना सरिता को। बड़े.....फेर.....वा.....ला.....लहंगा। ब..... ड़े..... फेऽ..... र वा..... ला.... लहं.....गाऽ.....''.....

ooo

# ग्लॉसी स्टोन

❑ प्रमिला वर्मा

सिद्धार्थ पार्क के सामने रघु, मुन्नी और छुट्टू खड़े थे अपनी-अपनी गोनी (प्लास्टिक का बोरा) लटकाए। इस पार्क में सुबह-सुबह बूढ़े और अधेड़ पुरुष इकट्ठे होते हैं। यह सब इकट्ठे होकर प्रतिदिन यहां ज़ोर-ज़ोर से हंसी के ठहाके लगाते हैं। वे दोनों हाथ ऊपर करके हँसते हैं, जिससे आसपास खड़े लोगों की भी हंसी छूट जाती है। बहुत देर हंसने के बाद ये लोग तितर-बितर हो जाते हैं और कई उनमें से प्राणायाम करते हैं, कुछ आपस में गपशप में तल्लीन हो जाते हैं। और कुछ तेज़ चलते या दौड़ते हैं। कई टोली बनाकर घर से आते हैं और फिर बातचीत करते हुए लौटते हैं।

तीनों बच्चे इतनी सुबह यहां कचरा बीनने आते हैं। कभी-कभी उनकी गोनी भर जाती है और कभी जब उन्हें आने में देर हो जाती है तो अधिक माल इकट्ठा नहीं कर पाते क्योंकि तब तक अन्य बच्चे भी आ जाते हैं। सिद्धार्थ पार्क उनका एक ऐसा अड्डा है जहां उनके झोले भर जाते हैं, क्योंकि शाम बल्कि रात तक यहां प्रेमी युगल आते हैं और खा-पीकर डिब्बे में कचरा फेंकते हैं। बाहर की ओर के कचरा-डिब्बे में सड़क पार के रहवासी दूध के पैकेट और अन्य कचरा फेंकते हैं।

इन लोगों को हंसता देखकर बार्डवायर की फेन्सिंग के पास खड़े तीनों बच्चे भी हंसी से लोट-पोट हो जाते हैं। मुन्नी की तो चड्डी में ही सूसू निकल पड़ती है। रघु डांटता है तो वह हंसते-हंसते ही झाड़ी के पास बैठकर सू-सू कर लेती है। रघु ने दोनों को बताया कि ये लाफ्टर क्लब के लोग हैं।

''मतलब'' छुट्टू ने पूछा
''अरे मतलब हंसने वाला क्लब''
''ये क्लब मतलब' छुट्टू ने फिर पूछा,

''अब मत1लब-बतलब जाने दे, जो पता था बताया।'' रघु दोनों छोटे भाई-बहन पर रौब जमाते हुए बोला। रघु तेरह बरस का है छुट्टू उससे दो बरस छोटा है और उससे दो बरस छोटी मुन्नी है। रघु को यह बात समझ में नहीं आती कि इन लोगों को मिलकर इतना हंसने की क्या ज़रूरत है।

---

*1. श्रीमती संतोष श्रीवास्तव, 204, केदारनाथ को. ल. सो., सैक्टर-7 निकट चारकीय बस डिपो, कांदिबली (पश्चिम) मुम्बई-400067, मो-09768623188*

मुन्नी और छुट्टू छोटे ज़रूर हैं लेकिन कचरा बीनने में छोटे नहीं हैं। छुट्टू सीमेन्ट से बने कचरा-डिब्बे में उतर जाता है और जल्दी-जल्दी प्लास्टिक, दूध की थैलियां दूसरे पैकेट, फ्रूटी के डिब्बे, और बोतलें ढक्कन बाहर फेंकता जाता है। बाहर मुन्नी और रघु इस सामान को जल्दी-जल्दी गोनी में भरते जाते हैं। फिर गोनी घर तक ले जाते हैं और घर के सामने कचरा पटक देते हैं। फिर मां उस कचरे को अलग-अलग छाँटती है। बाद में एक लड़का आकर वह सारा सामान ले जाता है, कभी 25-30 रुपए और कभी 15-20 रुपए उन्हें इस समान के मिल जाते हैं।

मां खुश हो जाती है। बापू के दिए 25-30 रुपयों में खाने का तेल, ढिबरी का तेल, चाय की पुड़िया, शक्कर दूध, लकड़ी, ज्वार का आटा, साबुन आता है। सुबह एक आदमी टेबिल पर कुछ पैकेट दूध के लेकर खड़ा हो जाता है, सब उससे ही 2-2 रुपये का दूध लेते हैं जो वह थैली फाड़कर सबको हिसाब से देता है।

मां कभी-कभी मछली बनाती है, सब्ज़ी लाती है, कभी सिर्फ रोटी और पिसी प्याज़ के लौंदे को रोटी के साथ दे देती है, वह न चटनी होती है न सब्ज़ी, सिर्फ पिसी प्याज नमक मिर्च के साथ। बापू शराब पीता है अपने अद्धे के रुपए निकालकर ही वह माँ के हाथ में बाकी रुपए रखता है, कभी कुछ भी नहीं देता। बाबू के आने से पहले तीनों बच्चे अपने-अपने बिस्तरों में दुबक जाते हैं। नींद आए या न आए पर वे या तो सो जाते हैं या सोने का नाटक करते हैं। क्योंकि बाबू दारु पीकर आता है। मां और रघु की पिटाई अकारण ही रोज होती है। कभी-कभी मुन्नी और छुट्टू भी पिट जाते हैं।

घर में घुसते ही वह बोला-''ला खाना दे'' लेकिन चूल्हे में एक भी लकड़ी नहीं, आंच नहीं, देखकर भड़क गया।

''कहां-से-दूं ? क्या हड्डियां तोड़कर भून दूं''

''क्या ? ला मैं तेरी हड्डियां भूनता हूं। कल-जो तीस रुपये दिए थे-वो कहां गए, क्या पिज्जा खा गई या कटलेस खरीद कर खा गई साली खरदौड़ औरत ?''

''हां! पिज्जा कटलेस खा गई, तीनों बच्चे भूखे सोए हैं। उन्हें सुलाकर पिज्जा खा आई। तेरे को भी कोई फिकर नहीं। वे लोग आए थे। कहते हैं गैरकानूनी जगह पर झोंपड़ा डाला है, पैसे तो देने होंगे, मैंने सौ रुपया दिया। अभी चार सौ और मांगते हैं। फिर अगले बरस देना होगा। कहते हैं पचास-पचास करके दे दो। वरना झोंपड़ा तोड़ देंगे। और बाकी झोपड़पट्टी वालों का तो दो सौ महीना बांधे हैं।''

''तो उनकी बाप की ज़मीन पर झोंपड़ा डाले हैं का ? बोलना उनसे कल''

''तेरे सामने आते हैं तो हाथ जोड़ कर खड़ा हो जाता है मुझे दबकाता है''

''चुप्प साली, तेरे तो खासमखास देवर लगे हैं, भौजाई-भौजाई करते हैं, और तू भी बिछी-बिछी जाती है उनके समाने। गुस्से में वह उठकर खड़ा हो गया। लुंगी कसकर बांधी और सोते रघु को घसीट लाया। बाजू से लकड़ी के ढेर से एक लकड़ी उठाई और रघु को पीट दिया। मुन्नी और छुट्टू दम साधे पड़े थे।''

''अरे, उसे काहे पीटता है ?''

''क्यों, ये नहीं कमा सकता क्या ?''

''जाते तो हैं तीनों कचरा बटोरने।''

''तो फिर ? नहीं बिका का ?''

''कहा तो कि सारा रुपया इकट्ठा करके उन्हें दे दिया''

''चुप्प खूब जबान चलाती है,'' उसने पत्नी को भी उसी लकड़ी से पीट दिया।

''साली! तू पीकर आ, तब समझ में आएगा कि खाली पेट सोया नहीं जाता, जलन मचता है पेट में। बताए देता हूं, तेरे ये तीनों सपोले चाहे भूखे सोएं, या भरपेट खाकर, मुझे मतलब नहीं, मुझे रोज खाना चाहिए। अब समझ ले।''

फिर वह लुंगी लपेटता बाहर निकला और लौटा तो हाथ में एक किलो आटा था, आलू प्याज और रस्सी से बंधी छोटी सी बोतल में तेल। पत्नी पिटकर भी सामान देखकर खुशी से लहरा उठी। उसने पति के हाथ से सामान लिया और खाना बनाने बैठ गई।

रघु तो रो ही रहा था। लेकिन खाना बनते देख बाकी दोनों बच्चे भी उठकर बैठ गए। रघु का रोना थम गया। बाहर चटाई पर चारों बैठ गए। मां चूल्हे में से निकाल कर गरम रोटी देती जा रही थी। चारों पनीली आलू की सब्ज़ी में रोटी डुबा-डुबाकर खाने में लगे थे।

''बाबू! ये पिज्जा क्या होता है ?'' छुट्टू ने पूछा।

''अपनी मां से पूछ, पिज्जा भी बताएगी, और-कटलेस भी,'' बाबू का दिमाग अब शांत था।

याद है पत्नी को कि एक बार एक आदमी ने जो उसे लैम्प-पोस्ट के नीचे खड़े होकर घूरा करता था उसके लिए एक छोटे बच्चे के हाथ पिज्जा भिजवाया था और पुछवाया था कि ''साथ चलेगी।'' पति के आने पर उसने सब कुछ उसे बता दिया था। पति उसी पर बरस पड़ा था और पिज्जा को लातों तले रौंद दिया था। वह बेहद डर गई थी। लेकिन पति ने उसे पिज्जा खिलाने का वादा किया था। एक दिन पति सचमुच ही 50 रुपये का पिज्जा लाया था और सभी ने खाया था। पति खुश था कि वह पिज्जा जैसी चीज़ खिला सका और पत्नी खुश थी कि उसका पति किसी से कम नहीं।

''बड़े सेठ-सिठानी खाते हैं पिज्जा-कटलेस'' रघु ने बताया।

कहां तो कुछ समय पूर्व भूख और लड़ाई का माहौल था और कहाँ वे लोग गरम-गरम खाना खा रहे थे और बातचीत कर रहे थे।

''बाबू! ये सिद्धार्थ पार्क में ये लोग हँसते क्यों हैं ?'' क्या घर में हंसने की मनाही है। ''रघु ने पूछा।''

''नहीं बेटा, घर में इन्हें हंसने का समय नहीं मिलता। रात-दिन रुपया कमाने की होड़ में ये हंसना ही भूल जाते हैं। फिर जब हंसना याद आता है तो हंसते ही नहीं बनता, उमर बीतती जाती है, बाद में मिल कर हंसते हैं, ताकि हंसते बने।'' तीनों बच्चे समझदारी में सिर हिलाने लगे।

''चलो, अब बस करो, अब अपनी मां के लिए भी रोटियां छोड़ोगे या खाते जाओगे।'' बाबू उठते हुए बोला।

''नहीं, नहीं, यहां मेरे लिए हैं, बच्चों को भरपेट खाने दो'' पत्नी बोली।

रघु देखता है मां के पास दो ही रोटियां हैं, वह उठ जाता है, मुन्नी और छुट्टू भी उठ जाते हैं।

सुबह-सुबह फिर वे लोग सिद्धार्थ पार्क के बाहर वाले कचरे के बड़े सीमेन्ट से बने डिब्बे के पास खड़े हो गए। आज हंसी शायद खतम हो गई है सभी तितर-बितर होकर घूम रहे थे। एक बूढ़ा आदमी इशारे से मुन्नी को बुलाता है। छुट्टू कहता है-''जा दादा जी बुला रहे हैं।'' मुन्नी घूम कर गेट के अंदर दाखिल होती है और उनके पास चली जाती है। दोनों लड़के कचरा बीनते रहे। आज उनकी गोनी में ढेर सारे फ्रूटी के डिब्बे हैं। कोल्डड्रिंक्स की बोतले हैं। दूध के पैकेट, बोतल के ढक्कन हैं। बूढ़े दादा जी मुन्नी को अपनी गोद में बिठा लेते हैं। खुद वे सीमेन्ट की बेंच पर बैठे हैं। मुन्नी के हंसने की आवाज़ आ रही है। वे मुन्नी के हर अंग में गुदगुदा रहे थे। फिर मुन्नी बाहर आती है तो उसके हाथ में चमकता दो रुपए का एक सिक्का है। छुट्टू की आंखें चमकने लगी ''दो रुपया'' वह हैरत से चिल्लाता है। रघु भी खुश हो जाता है। कल पार्क में कोई पार्टी रही होगी तभी ती इतना माल मिल गया। गोनियां भरी हुई हैं; तीनों रास्ते की दुकान से रंगबिरंगी मीठी गोलियां खरीदते हैं, जिन्हें वे प्रतिदिन कांच की बर्नी में भरी देखा करते थे। आज उनकी हथेलियों पर थीं।

रात फिर मां के साथ मारपीट हुई थी। रघु समय रहते घर से बाहर खिसक लिया। वरना वह भी बेबात मार खाता। आज खाने में मज़ा ही नहीं था ज्वार की रोटियों के साथ पिसी प्याज़ लौंदे जैसी। बापू इस चटनी से बहुत चिढ़ता था कहता था-''ऐसा लगता है किसी ने धचक कर रख दिया है'' आज शनिवार के बाज़ार से मां दोनों बेटों के लिए गंजियां खरीद लाई थी, इसी से सब्ज़ी के पैसे नहीं बचे। अगले शनिवार वह मुन्नी के लिए फ्रॉक लाएगी।

मुन्नी भी बड़ी हो रही है। मां उसे साबुत फ्रॉक से ढकना चाहती है। उसकी यह फ्राक फटी है, इसीलिए पार्क वाले दादा जी उसके फटे कपड़ों में हाथ डालकर उसे सब जगह गुदगुदाते हैं। मुन्नी को अच्छा नहीं लगता है। लेकिन छुट्टू पार्क वाले दादा जी से बहुत खुश है। मीठी गोलियां, चने जो खाने को मिलते हैं। यदि उसे भी कोई रोज़ एक ही रुपया दे तो वह गुदगुदवाने को तैयार है। लेकिन उसे कोई नहीं बुलाता।

उस दिन रास्ते में छुट्टू बोला–मुन्नी, तू दादा जी से बोल कि पूरे 10 रुपए दे दें। दस दिन का इकट्ठा गुदगुदा दें। फिर अपनी फ्रूटी खरीदेंगे।

''क्या होगा इतनी सी फ्रूटी में, किसके दांतों में चिपकेगी ?'' रघु ने बड़प्पन से कहा।

''अरे, एक घूंट ही सही चखने को तो मिलेगी।'' छुट्टू ने कहा। तीनों एक पेड़ के नीचे बैठकर चने खाने लगे।

''कल दादा जी ने पांच रुपए देने को कहा है।'' मुन्नी ने उदासी के साथ बताया।

''पाँच रुपए ?'' छुट्टू खुशी से चीखा।

''जब बाबू कमाता है तो मां क्यों नहीं कमाती। अगर मां भी कमाए तो हमारे पास कितने रुपये होंगे'' छुट्टू ने कहा।

''फिर हम रोज दाल खाएंगे'' मुन्नी की आँखें चमकीं। उसे दाल बहुत पसंद है।

''मां की देह में शक्ति नहीं है'' रघु बोला।

''तुझे कैसे पता ?'' मुन्नी ने पूछा।

''अरे रात बाबू बोल रहा था कि तेरी देह-में तो शक्ति नहीं है, मैं दूसरी औरत लाऊंगा'' रघु ने कहा।

''दूसरी औरत याने दूसरी मां, जैसे कल्लू की दूसरी मां है। हैं रघू ?'' छुट्टू गहन विचार करते हुए बोला।

मुझे नहीं मालूम बाबू ऐसा चाहें जब बोलता है। लेकिन लाता नहीं दिखता। उसे मां ही अच्छी लगती है। रघु ने बताया।

''बाबू झूठ बोलता होगा'' मुन्नी निश्चिन्त हो गई। तीनों उठकर चल दिए।

सुबह मां ने न चाय दी न रोटी। ''पहले डिब्बे, पिटरिया, अखबार ढूंढ़कर लाओ, आज चाय दूध के पैसे नहीं है।'' तीनों गोनियां लटाकाकर चल दिए। बाबू गहरी नींद में सो रहा था। रात उसने बहुत पी ली थी। उल्टी भी की थी। झोंपड़े में उल्टी की दुर्गंध फैली थी।

''आज तू गुदगुदी वाले दादा जी से पूरे 10 रु मांगना।'' छुट्टू ने मुन्नी का हाथ पकड़कर अनुनव भरे स्वर में कहा।

''दस रुपये में पांच पूरी और आलू की सब्ज़ी ठेलावाला देता है'' रघु बुदबुदाया। आलू पूरी का सुनकर छुट्टू फ्रूटी वाली बात भूल गया। 6-7 दिन से वह दादा जी के पास जा रही है, इन लोगों को तो गोली-चने ही अच्छे लगते हैं।

''नहीं मैं नहीं जाने वाली उनके पास''

''क्यों ? रघु बोला,''

''नहीं बोली तो नहीं, अब कभी नहीं जाऊंगी,''

मुन्नी को कल की बात याद आ गई, जब बूढ़े दादा जी ने पत्थर की बैंच पर अपने दोनों पैरों के बीच उसे बिठा लिया था.....और.....नहीं! नहीं मैं हरगिज़ नहीं जाऊंगी, ''मुन्नी की आंखें भर आईं। छोटी सी मुन्नी के शरीर में दर्द होने लगा था। छुट्टू की सारी खुशियों पर पानी फिर गया। बगैर चाय-रोटी के उसका सिर भी दुख रहा था।

सहसा मुन्नी चीख उठी.....कचरे के डिब्बे के पास एक सफेद प्लास्टिक की थैली में ढेर सारी पूरियां रखी थीं।

''छुट्टू, रघु भैया देखो पूरियां '' ''मुन्नी चीख रही थी। दोनों दौड़े।'' सड़ी होंगी रघु ने कहा।

तभी पीछे से एक औरत की आवाज़ सुनाई पड़ी।

''नहीं बेटा! सड़ी नहीं है, गाय के लिए रखी थीं। उसमें गुड़ भी है तुम लोग ले लो''

रघु ने पैकेट उठा लिया। ''आओ, तुम लोग यदि मेरे घर चलोगे तो मैं और भी खाना दूंगी।'' तीनों उस औरत के पीछे चलने लगे।

औरत भीतर गई। दो डिब्बे लाई, एक में कचौरी और मिठाई थी, दूसरे में आलू की सूखी सब्ज़ी। एक कुल्हड़ में ठंडे स्वादिष्ट छोले। खाना देखकर तीनों बच्चों के चेहरे चमकने लगे।

''जूठा कुछ भी नहीं है बच्चो, न ही सड़ा है, फ्रिज में रखा था'' औरत ने कहा। सिठानी से पूछ मुन्नी क्या हमें खाना रोज देंगी ? छुट्टू ने कहा। नहीं ! पार्टी, शार्टी या शादी-वादी होगी, बचा हुआ दिया, रोज देंगी क्या ? ''रघु ने अपना बड़प्पन दिखाया।''

''हां! पार्टी थी। मेरा इकलौता बेटा विदेश से आया था और कल चला भी गया वापिस। उसी ने पार्टी दी थी। अब तो घर में न कोई है, न आएगा। क्या करूंगी मैं इतने खाने का'' औरत ने आह भरते हुए कहा। मांग में सिंदूर नहीं, हाथों में चूड़ियां नहीं, क्रीम कलर की

सिल्क की साड़ी में सेठानी महारानी दिख रही थी। फिर उनके सामने कल रात बातचीत के वे शब्द तैर गए। नहीं, तुम्हारी मॉम को साथ चलने नहीं कहना। जानते हो न मेरे भाई बहन हमारे पास ही रहते हैं, और बेटे के शब्द.....नहीं कहूंगा वे यहीं ठीक हैं'' अपने अकेलेपन से घबरा कर औरत ने आंखें मूंद लीं, खोली तो उनमें दो बूंद आँसू अटके थे।

''और भी खाना है, लेकिन तुम इतने खाने का क्या करोगे ? फ्रिज में रख देती हूं। कल आकर ले जाना। सड़ेगा नहीं'' औरत ने बेहद मुलायम ढंग से कहा। दो दिनों के खाने का इंतज़ाम हो गया था। थोड़ा खाना घर ले जायेंगे। मां तो खा लेगी लेकिन बाबू किसी का दिया नहीं खाता। मुन्नी ने कहा कि उसकी बदौलत हुआ है, न वह पूरी देखती, न सिठानी मिलती।

तीनों इसी बात पर झगड़ते हुए पार्क की बार्डवायर फेन्सिंग के पास छाया देखकर बैठ गये। बंगले के गेट पर खड़ी वह औरत उन तीनों बच्चों को तृप्त होते देखती रही।

ooo

*लघु कथा*

# हथियार

❑ रामकुमार आत्रेय

'भाई, नौकरी करना हमारी मजबूरी है। मजबूरी न होती तो हम एक पल के लिए भी यहाँ नहीं रहते। मौत साली दिन-रात सिर पर मंडराती रहती है। ऐसे में अपनी हिफाज़त करना ज़रूरी है। मैं सोच रहा हूँ एक पिस्टल खरीद लूँ। ग़लत तो नहीं कह रहा मैं।' दोपहर के समय साथ मिलकर लंच करते हुए चार कर्मचारियों में से पहले ने बातचीत शुरू की।

''ठीक कह रहे हैं आप, भाई साहब। ये नक्सलवादी न जाने कब हमारा अपहरण कर लें फिर कुत्ते की तरह मारकर हमारी लाश न जाने कहां फेंक दें। मैं भी सोच रहा हूँ कि पिस्टल तो खरीद ली जाए। पर मेरे पास पैसा नहीं है इसलिए मुझे कहीं से देसी कट्टा दिलवा देना।'' दूसरे ने पहले की बात का समर्थन किया।''

''हमारा यह कार्यालय है भी जंगली क्षेत्र में, गांवों से बहुत दूर। यह जगह नक्सलियों का गढ़ है। वे पैसे के लिए कभी भी हम पर हमला बोल सकते हैं। मैं तो एक बन्दूक खरीदना चाहता हूँ। बालपन में मैंने कभी सपना देखा था बन्दूक खरीदने का। उसे अपने कमरे में रख लूँगा।'' तीसरे ने मुँह में रखे निवाले को पेट के हवाले करते हुए अपना पक्ष रखा।

अब चौथे की बारी थी। पर वह कुछ नहीं बोला। चुपचाप खाना-खाता रहा। लग रहा था जैसे कि उसने कुछ सुना ही नहीं। पहले तीनों ने एक-दूसरे की ओर देखा और मुस्कुरा दिए। फिर पहले ने उसे टोका-'क्यों भाई क्या तुमने हमारी बातचीत नहीं सुनी ? क्या तुम्हें नक्सलियों से कोई खतरा नहीं है ?

''सुनी है भाई सुनी है।'' चौथे ने उत्तर दिया।

''तो फिर तुम कौन-सा हथियार खरीद रहे हो खुद की हिफ़ाज़त के लिए ?''

''कोई नहीं।''

''कोई नहीं। क्या तुम खुद को सुरक्षित समझ रहे हो।'' चौथे का उत्तर सुनकर चौक तो सभी थे। पर यह प्रश्न पहले ने ही पूछा।

---

*1. म. न.-864, ए/12, आजाद नगर, कुरुक्षेत्र-136119, फोन नं. : 94162-72588*

''मैं समझता हूँ कि जब तक मेरे पास कोई हथियार नहीं है, तब तक मैं सुरक्षित हूँ!'' उसने धीमे से कहा और अपना खाना जारी रखा।

शेष तीनों बेवकूफों की तरह कभी एक-दूसरे के मुँह की और तो कभी खाना-खाते चौथे के मुँह को ताक रहे थे।

ooo

## ग़ज़ल

❒ किशन तिवारी

जो ग़लत है वो ग़लत उसको सही कैसे कहूँ।
तुमसे कहना है अकेले में अभी कैसे कहूँ॥

सबको मतलब है यहाँ बस अपने मतलब के लिए।
इस तरह की ज़िन्दगी को ज़िन्दगी कैसे कहूँ॥

यात्राएं उम्र-भर चलती तो रहेंगी दोस्तो।
कौन कब किसका बनेगा सारथी कैसे कहूँ।

दुश्मनी कहना तो है अपमान रिश्तों का जनाब।
अजनबी भी हम नहीं पर दोस्ती कैसे कहूँ।

उम्र-भर का साथ है या एक-दो पल का मिलन।
इस समय की दौड़ में इसको अभी कैसे कहूँ॥

कोई रह जाये कहीं आगे जमाना जायेगा।
उंगलियाँ थामें रखो मिलकर सभी कैसे कहूँ॥

आओ हम इस ज़िन्दगी के पल गुज़ारें झूमकर
जाने किस पल में छिपी हो त्रासदी कैसे कहूँ॥

ooo

---

* *34-सेक्टर, 9ए, साकेत नगर, भोपाल-462024, मो. न.-9425604488*

# क्यामत

❑ जसविंदर शर्मा

एक आतंकवादी हादसे में मेरे साथ पांच सौ से ज़्यादा लोग मारे गए थे। उनमें से कुछ हिन्दू थे और कुछ मुसलमान, कुछ सिक्ख और कुछ ईसाई। इतने सारे लोगों के कटे-फटे शरीरों से उनकी शिनाख्त करनी मुश्किल थी। अतः मुझे भी मुसलमान समझकर कब्र में गाड़ दिया गया था। मरने के बाद कुछ खास फर्क भी नहीं पड़ता।

जब मैं ज़िन्दा था तब मुझे मरने से सब से ज्यादा डर लगता था। किसी के मरने पर जाता तो रह-रहकर कांप उठता कि मेरे मरने पर न जाने मुझे कितना कष्ट होगा। मेरे अधूरे कामों का क्या होगा। जब मैं मर गया तो मुझे इतना सकून मिला कि मैं दोबारा जिंदा नहीं होना चाहता था। कब्र में जाते ही एक बार तो मेरा दम घुटने लगा था फिर मुझे याद आया कि दम तो मेरा पहले ही निकल चुका है अब किस बात का खौफ।

मैं अपने-आप में बेहद खुश था कि अब मुझे कोई विघ्न नहीं पहुंचाएगा। जीते-जी किसी ने भी मुझे चैन से रहने नहीं दिया। मेरी इतनी लम्बी-चौड़ी गृहस्थी-तीन चाचा, दो ताऊ, दो बुआ, तीन मासी। मेरी श्रीमति की गृहस्थी तो और भी विस्तृत। सब की खुशियां और गम बांटते-बांटते मैं भरी जवानी में ही अधेड़ दिखने लगा था। एक अकेला कमाने वाला और दुनिया-भर के रस्मों-रिवाज। पक गया था दुनियादारी से।

खैर, मैं कशमकश से बिल्कुल बाहर था। 6 बाई सवा दिन फुट की वह अंधेरी सुनसान कब्र मेरी अकेले की सम्पत्ति बन चुकी थी। मैं पूरे सब्र, इत्मीनान और मजे के साथ मिट्टी में घुलता जा रहा था। कहीं कोई जल्दी या चिंता की बात नहीं थी। वक्त, काल, स्थान या दिशा का अहसास यहां आकर पूरी तरह खत्म हो चुका था। एक शायर की पंक्तियां मुझे याद आ जाती, 'बड़े चैन से कब्र में सो रहा हूं, निराली जमीं है, अनोखा जहां है।'

मज़े की जिन्दगी यानि मौत को मरते-मरते अभी कोई खास अरसा नहीं बीता होगा कि कब्र में दफन होने का यह पुरसकूं अहसास भी मुझ से छीन लिया गया। अभी तो शांति से रहना नसीब हुआ था कि मुझे अपने सिर के ठीक ऊपर-ठक-ठक की कर्कश आवाजें सुनाई दीं। जमाने का जब्र देखिए कि एक दूसरे मुर्दे को मेरी कब्र में मेरी बगल में लिटा दिया गया था।

कुछ दिन तो मैं डरा-सहमा चुपचाप लेटा रहा। आखिर मुझसे रहा नहीं गया। मैंने मरी हुई आवाज में अपने साथ लेटे मुर्दे से पूछा, 'कहो मियां, कहां के रहने वाले हो ? मेरा पड़ोसी निराश स्वर में बोला,'अब क्या फर्क पड़ता है, अब तो जीना यहां, मरना यहां।' मेरा मूड उखड़ गया। मरकर भी यह आदमी दुखी है। अरे मरने के बाद तो हर चीज मे मुक्ति मिल जाती है। कुछ बरस यूं ही गुज़र गए। हमारे बीच खामोशी इतनी गहरी हो गई कि फिर मुझसे रहा नहीं गया। मैंने साथ लेटे उस आदमी से पूछा, 'तुम कैसे मरे ?' वह आदमी कराहते हुए बोला, 'सन् 84 के दंगों में लोगों पर बम फेंकता था, फिर मैं 95 में पुलिस की गोली खाकर मर गया।' मैं बुदबुदाया, 'मैं और मेरा कातिल एक ही कब्र में ?' या खुदा! क्या बाहर कयामत तो नहीं आ गई।

ooo

## चमत्कार

उसने मूर्तियों की दुकान से पीतल की बनी चूहे की एक मूर्ति खरीदी और अपने घर की तरफ चल पड़ा। कुछ देर बाद उसके आश्चर्य की सीमा न रही जब उसने अपने पीछे मुड़ कर देखा। सैंकड़ों की संख्या में पतले-मोटे, लम्बे-नाटे तथा, छोटे-बड़े चूहे उसके पीछे चले आ रहे थे। उसने सोचा कि हो न हो उसकी पीतल की मूर्ति में कुछ जादुई या तिलस्मी बात हो।

वह व्यक्ति घबरा गया। मूर्ति को छोड़ भी नहीं सकता था। वह आदमी तेज दौड़ने लगा। चूहे भी उसके पीछे-पीछे दौड़ने लगे थे। दौड़ते-दौड़ते वह एक भरी नदी के पास पहुंच गया। इससे पहले इतने सारे चूहे उसके पास पहुंचते, उसने फटाक से उस पीतल की बनी चूहे की मूर्ति उस तेज बहती नदी में फैंक दी। उसकी आंखे फटी की फटी रह गई जब उसने देखा कि उसके पीछे आ रही चूहों की विशाल फौज धड़ाम से नदी में कूद गई। उसके माथे पर पसीने की लहर फूट आई थी। ऐसी अजीबोगरीब बात किसी और को बताता तो कौन उसका यकीन करता। कुछ सोचकर उसकी आंखों में चमक आ गई। वह तेजी से वापिस उसी बाज़ार में पलटा। उसी मूर्तियों वाली दुकान पर पहुंचकर बोला, 'आपके पास किसी नेता की मूर्ति है ?'

ooo

# कारण

इधर जब से चित्रगुप्त ने मृत्यु-पंजिका में मौत के कारण का नया कालम शुरू करवा दिया था, यमराज व यमदूतों के बीच रोज़ाना तीखी बहस होने लगी थी। एक यमदूत ने कल ही छेदीलाल नामक आदमी की दुखी आत्मा मृत्युलोक से अपने फंदे में लपेटकर यहां ला पटकी थी और तब से उसमें और यमराज में बहस हो रही थी। 'मृत्यु का कारण' वाले कॉलम में यमदूत ने लिखा..... भूख। यमराज के कम्प्यूटर इसे क्लीयर नहीं कर रहे थे। वहां भूख शब्द पहले से दर्ज नहीं था,। मामला चीफ के पास पहुंचा। यमदूत की पेशी हुई। चीफ ने कहा, 'भला भूख से कोई आदमी कैसे मर सकता है और वह भी भारत जैसे देश में। ज़रूर तुम से अपने काम में कोताही हुई है। मौत के कारण का फिर से जाकर पता लगाओ।

यमदूत ने अपनी सफाई में कहा 'जनाब, इसके पड़ोसियों ने तो यही बताया है। यह आदमी अपने हक के लिए आमरण अनशन पर बैठा था। इतने में सरकार का तख्ता पलट गया। आजकल खिचड़ी सरकारों का जमाना है वहां। लोग अपनी-अपनी गद्दी बचाने के लिएं भागते रहे। इसके साथ के लोग तो चोरी से कुछ न कुछ खा-पी लेते मगर यह ठहरा कोरा आदर्शवादी। पन्द्रह दिन तक निराहार बैठा रहा। कोई इसका मरणव्रत तुड़वाने नहीं आया। सोलहवें दिन इसका शरीर जवाब दे गया। जनाब, न तो यह बीमारी या कुपोषण से मरा है, यह बदनसीब तो इन्सान द्वारा इन्सान के शोषण से मरा है। 'चीफ संतुष्ट हो गया।'

ooo

# अतिथि—कक्ष

❑ रामयतन यादव

वह दिन भर अपने नये मकान के अतिथि-कक्ष को सजाने सँवारने में व्यस्त रही। शाम को जब पति दफ्तर से लौटा तो सबसे पहले अतिथि-कक्ष के बारे में ही पूछा–''क्यों भई, तुमने अतिथि-कक्ष को व्यवस्थित तो कर दिया न ?''

पत्नी थकी हुई मुस्कान के साथ बोली, ''हाँ, अतिथि-कक्ष पूरी तरह तैयार है.....।'' फिर कुछ पल रुककर पूछ बैठी, ''लेकिन तुम अतिथि-कक्ष के लिए इतना परेशान क्यों हो ?''

''भई बात यह है कि नये मकान की खुशी में मैंने दफ्तर के कुछ दोस्तों को एक पार्टी दी है.....इसलिए अतिथि-कक्ष को तुम इतना आधुनिक बना दो कि उन लोगों पर हमारी धाक जम सके।''

पत्नी एक बार फिर मुस्करायी, बोली ''खुद ही चलकर देख लो। कहीं कोई कमी रह गयी हो तो.....।''

''ठीक है, अभी चलकर देख लेता हूँ।'' जूते उतारकर चप्पल पहनते हुए उसने कहा, और पत्नी के साथ अतिथि-कक्ष की तरफ चल पड़ा।

अतिथि-कक्ष में जाकर उसने सबसे पहले दीवारों पर टँगी तस्वीरों का सूक्ष्मता से अवलोकन किया। एक से बढ़कर एक आधुनिक कलाकृतियों से दीवारें सुशोभित थीं। कलाकृतियों पर वह अपनी नज़रें दौड़ा ही रहा था कि अचानक उसकी नज़र अपने स्वर्गवासी पिता की तस्वीर पर जा टिकी। उसका मन खट्टा हो उठा। उसने पत्नी की तरफ देखकर कहा, ''अरे भई, तुमने यह क्या कर दिया ?''

''क्या हुआ.....?'' पत्नी ने चौंककर पूछा।

''आधुनिक कलाकृतियों के बीच पिता जी की तस्वीर क्यों लगा दी.....देखो तो कितनी भद्दी लग रही है।.....बिल्कुल मखमल में टाट के पैबंद की तरह.....।''

पत्नी कुछ न बोली। शायद उसे अपनी भूल का अहसास हुआ। उसने आनन-फानन में पिता की तस्वीर को दीवार से उतारकर वहाँ एक डायनासोर की तस्वीर टाँग दी।

उसके बाद उसने एक बार फिर दीवारों को देखा और आह्लादित होकर बोला ''हाँ, अब देखो अतिथि-कक्ष की आधुनिकता में चार-चाँद लग गये न.....?'' पत्नी ने मुस्कुराकर उसकी बात का समर्थन किया।

दूसरे दिन जब अपने दोस्तों को साथ लेकर घर पहुँचा, तो गर्व से उन्हें अपना अतिथि-कक्ष दिखाने लगा। लेकिन जब उसकी नज़र कोने में रखी मेज पर पड़ी तो वह आश्चर्य में पड़ गया। उसने तेजी से रसोई में जाकर पत्नी से पूछा, ''मंजू, मेज पर जो तस्वीर थी वह कहाँ गयीं ?''

''कौन-सी तस्वीर ?'' पत्नी ने प्रति प्रश्न किया।

''अरे वही सुनहरे फ्रेम वाली तस्वीर जिसे नैनीताल में एक पहाड़ी पर मैंने खिंचवाया था।'' वह हल्का-सा झुँझलाया।

''अच्छा, वह तस्वीर.....ले.....लेकिन वह तस्वीर तो उसी मेज पर रखी थी।'' पत्नी पकौड़े तलने के लिए कड़ाही में तेल डालते हुए बोली।

पत्नी की ओर से यथाशीघ्र रुचिकर जवाब न पाकर वह अपने-आप बड़बड़ाया, ''लेकिन वह तस्वीर गयी कहां ?'' और फिर उसकी जगह पर एक कुत्ते की तस्वीर किसने रख दी है ?

पत्नी माथे पर बल देकर इस संबंध में कुछ सोच ही रही थी कि बगल वाले कमरे से उनका आठ वर्षीय बेटा बोला, ''डैडी, मेज के ऊपर से आपकी तस्वीर मैंने हटायी है।''

''क्यों ?''

क्योंकि आपकी तस्वीर वहाँ अच्छी नहीं लग रही थी.....इसलिए दादाजी की तस्वीर के साथ उसे भी कबाड़ में डाल दिया, और उसकी जगह एक खुबसूरत कुत्ते की तस्वीर रख दी है.....''कुछ रुककर खुश होते हुए उसने अपनी बात पूरी की, ''विदेशी कुत्ते की तस्वीर है डैडी.....।''

बेटा कुछ और बोलता इसके पहले ही वह यंत्र मानव-सा अतिथि-कक्ष में लौट गया।

ooo

# चोरी

❑ रामयतन यादव

वे दो भाई थे। उनके बीच मकान, खेत और पुश्तैनी जायदाद से जुड़ी लगभग हर चीज़ का बंटवारा हो चुका था। यहां तक कि दौलत के बंटवारे के दरम्यान दोनों के दिलों में भी दरारें पड़ गई थीं। दरारें इतनी लंबी-चौड़ी थी कि उन्हें पाटना मुश्किल था। पंचायत की देख-रेख में आंगन में उठने वाली दीवार के साथ-साथ उनके दिलों में भी दीवारें उठ गई थीं। दीवारें इतनी ऊंची थी कि उनके आर-पार लांघना कठिन था। गाली-गलौज और सिर फटौवल भी उनके बीच हुआ था। यही कारण था कि दोनों एक दूसरे को हमेशा नफरत की निगाहों से ही देखते। दोनों एक-दूसरे के दुःख में सुखी और सुख में दुःखी होते। अगर बड़े भाई पर कोई विपत्ति आ पड़ती तो छोटा खुश होता और छोटा किसी आफत में फंस जाता तो बड़े को खुशी होती।

तमाम तरह की चीज़ों के बंटवारे के बावजूद घर के आगे का दालान अभी किन्हीं कारणों से नहीं बंटा था। दालान का उपयोग अभी साझे में ही था।

साझे दालान में अभी दीवार नहीं उठी थी, इसलिए उसका उपयोग दोनों भाई अपनी-अपनी सुविधा से करते थे। एक भाई उस दालान के एक कोने में अपनी भैंस बांधता तो दूसरा दूसरे कोने में पुआल का बंडल रखता।

उसी दालान के एक कोने में रखी चौकी पर एक दिन खूब सवेरे छोटे भाई का नन्हा-सा बच्चा जिसकी उम्र नौ-दस माह से ज़्यादा न थी, मुंह से कुछ-कुछ अस्फुट स्वर निकालता हुआ खेल रहा था। कभी-कभी जोर से किलकारी भी मारता। उसकी किलकारियों में मानो मिसरी घुली थी। उसकी निष्कलुष और निर्दोष किलकारियों से कोई भी रससिक्त हो सकता था, लेकिन उस समय वहीं पर मुंह धो रहे बड़े भाई पर इसका कोई असर न हुआ। उल्टे उसका मन नफरत से भर गया। उसने दांतों पर दातुन की रगड़ को कुछ तेज करते हुए तीखी निगाहों से बच्चे की तरफ देखा और बुदबुदाया, "साला सांप का बच्चा.....।"

फिर उसने बच्चे की तरफ से अपना मुंह फेर लिया। बच्चे की मोहक किलकारी दालान में एक सिरे से दूसरे सिरे तक गूंजती रही। मगर इस किलकारी के प्रभाव से वह अपने को सायास बचाता रहा और हाथ-मुंह धोने का उपक्रम करता रहा। हाथ-मुंह धोकर जैसे ही वह चौकी के निकट खड़ा हुआ, तो न चाहते हुए भी बच्चे की तरफ उसका ध्यान चला ही गया।

---

*1. मकसूदपुर पो० फतुहा (पटनां), पिन - 803201, मो० 0934798952*

आंखें चार होते ही बच्चा एक बार फिर जोर से खिलखिलाया। उसके हाथ अनायास ही बच्चे की तरफ बढ़ गए। लेकिन तत्क्षण ही मन के किसी कोने से सिमटा यह भाव उसके दिमाग में उतर आया कि यह तो दुश्मन का बच्चा है। दिमाग में यह बात उतरते ही उसके हाथ रुक गए। फिर वह एक झटके से घर के अंदर जाने के लिए मुड़ा ही था कि उसे देखकर बच्चा फिर खिलखिलाया। वह घर के अंदर जाने की बजाए वहीं खड़े होकर चारों तरफ देखने लगा। उस वक्त वहां कोई न था सिवा उस बच्चे के।

जब उसे पूरी तरह से इत्मीनान हो गया कि बच्चे और उसके सिवा यहां और कोई नहीं है तब उसने आव देखा न ताव एक झटके से बच्चे को उठाया और.....और सीने से लगाकर बेतहाशा उसके गालों को चूमने-दुलारने लगा।

ooo

## गज़ल

❑ कमलजीत चौधरी

किसी चेहरे पे यहाँ हिन्दोस्तां नज़र नहीं आता,
आंखों में देशपरस्ती का गुमां नज़र नहीं आता।

कट रहे दरख्त मेरे अरमानों की तरह,
इस गुलशन का बागवां नज़र नहीं आता।

इंसानियत को दरकिनार किया सब ने यहां,
जमीं पे अब कोई इंसान नज़र नहीं आता।

इमारतों को झोपड़ियाँ दिखाई दें कैसे भला,
अपने सामने उनको आसमां नज़र नहीं आता।

बिन बुलाए दौड़ते हैं जवान औरत को देख,
बूढ़ों की इमदाद को जवां नज़र नहीं आता।

कोई मतलब ही होगा वो आए तेरे पास 'कमल',
यूँ तो कोई तुझपे महेरबां नज़र नहीं आता।

ooo

* *पता-गांव व डाक-काली बड़ी, तहसील-साम्बा, जिला-जम्मू, दूरभाष-243997*

# गीत

❑ निर्मल विनोद

धूप का है शामियाना
छाँव के हैं पाँव जलते
चल, रे मन! पत्थर-नगर से
लौट कर हैं गाँव चलते
दूर, अपने गाँव चलते
धूल कितनी रात-दिन फाँकी
पर, दिखी सुख की नहीं झाँकी
हो गया घायल यहाँ पर, हृदय, अनगिन घाव पलते
लौट कर हैं गाँव चलते
दूर, अपने गाँव चलते
पी बहुत डाला धुआँ काला
लड़खड़ाती साँस की माला
पोखरे, पनघट, नदी-तट पर बितायें दिन टहलते
लौट कर हैं गाँव चलते
दूर, अपने गाँव चलते
हाथ को न हाथ पहचाने
और बालू कौन अब छाने
शहर के आकर्षणों से, भर गया जी खुद को छलते
लौट कर हैं गाँव चलते
दूर, अपने गाँव चलते
देख, बँसवट फिर बुलाते हैं
याद श्यामल नीम आते हैं
गाँव की अमराइयों में, चल यहाँ पल बहुत खलते
लौट कर हैं गाँव चलते
दूर, अपने गाँव चलते

ooo

# कुछ अपरूप नहीं

❑ निर्मल विनोद

सुन्दरता के स्त्रोत चतुर्दिक, तू क्यों देख कुरूप रहा है ?
ओ मन! सुन्दरता निहार ले, तू भी रूप ज़रा सँवार ले!
खुला पड़ा है रूप-खज़ाना
रह-रह तुझको पास बुलाता
छलक रहा अनुपम रस-सागर
अम्बर-भर में रस छलकाता
रस की उमड़ा करें तरंगें
पवन हिंडोले चढ़ी फुहारें
उड़-उड़ दिशा-दिशा में बिखरें
तू भी थोड़ी-सी फुहार ले
तू भी रूप ज़रा निखार ले, ओ मन! सुन्दरता निहार ले।
जिसने सुन्दर सृष्टि रची है
रचनाकार महान बड़ा है
पग-पग पर है कोई झांकी
निरूपम कोई रूप खड़ा है
रच डाली हैं अनगिन कृतियाँ
उसने एक-से-एक अनोखी
सृष्टि मनोहारी स्रष्टा की
तू भी तो निज छवि सँवार ले
तू भी रूप ज़रा निखार ले, ओ मन! सुन्दरता निहार ले।
सुंदर कृतियों की सराहना
है सर्जक की ही सराहना

अपरूपों में रूप खोजना
कला-धर्म का ही निबाहना
कुछ अपरूप नहीं-यह चिन्तन
मुक्त दृष्टि का ही अभिसिंचन
सचराचर अभिव्यक्ति सत्य की
शिव-सुन्दर ही की विचार ले
तू भी रूप ज़रा निखार ले, ओ मन! सुन्दरता निहार ले!
सुन्दरता के स्रोत चतुर्दिक, तू क्यों देख कुरूप़ रहा है ?
ओ मन! सुन्दरता निहार ले, तू भी रूप ज़रा सँवार ले।

ooo

## मछुआरे नयन

❑ श्याम बिहारी

तेरी आँखों के समुद्र में
दर्द के कैसे यह काफिले
किन मछलियों की तलाश में
इतनी दूर इतने गहरे, में चले आए हैं
ये गर्वितलोचन, मछुआरे नयन
दर्द या समुद्र या
कोई काफिला वीरानों में
कितनी दूर
कितने गहरे में चले आए हैं
यह गर्वितलोचन, मछुआरे नयन

ooo

## शर्मनाक

इससे शर्मनाक तो कुछ भी नहीं
कि वे हाथ भी न हिलाएं
और मुझे
मुझ ही से लूट ले जायें
इससे खतरनाक तो कुछ भी नहीं
कि ज्वालामुखी फटे
और लावा
किताबी सीलन में बदल जाए

ooo

## थरथराहट

❑ अरुण कुमार बजाज

माना,
हमने बहुत-सी गल्तियां की
पेड़ों को उखाड़
ऊँची-ऊँची इमारतें खड़ी कर लीं
जंगलों को काट शहर बना लिए
तुम्हारे गर्भ से
न जाने क्या-क्या निकाला
और ठूँस-ठूँस भर दी
अपनी गन्दगी
माना,
हम तो ऐसे ही हैं
परन्तु मां,
तुम तो ऐसी न थी
क्या तुम्हें मालूम है
तुम्हारी जरा सी थरथराहट ने
कितने लोगों की ज़िन्दगियाँ
समाप्त कर डाली

ooo

## धरा और सागर

सदियों से
चीरती रही
मेरा वक्ष
तुम्हारी संतानें
मैं सहता रहा
फैंकते रहे
अथाह गंदगी
मेरे द्वारे
मैं शांत रहा
अब
पल भर के लिए
आया मैं
तुम्हारे आंगन
और
तुम
रो पड़ी

ooo

# भरी जवानी में छीन लिया

❑ नरेश कुमार उदास

मृत्यु तूने छीन लिया
मेरा जवान बेटा
उसके मुखरित होते
सारे सपने
मिटा डाले।

उसने अभी
देखा ही क्या था
अभी तो वह
कुलाँचे भर रहा था।
उसकी आँखों में
सपने जवान हो रहे थे
पंख फड़फड़ा रहे थे।

अभी तो
उसने दूल्हा बनना था
घोड़ी चढ़ना था
बसाना था
अपना घर-परिवार
सुननी थी अभी
अपने बच्चों की
किलकारियाँ
उनसे खेलना-तुतलाना था।

लेकिन तेरा बेरहम पंजा
छीन ले गया
उसे भरी जवानी में
पलभर में।

हम बस देखते रह गए
मृतदेह को
कुछ भी न कर पाए
उसके लिए

मृत्यु तूने
थोड़ा वक्त तो दिया होता
तूने भरी जवानी में
छीन लिया
मेरा एकमात्र बेटा
मुझसे।

ooo

# मृत्यु

❑ नरेश कुमार 'उदास'

मृत्य
तू निर्दयी है
तू छीन लेती है
किसी भी परिवार की
खिलखिलाती हंसी।

छीन लेती है
उनके सारे सपने
छीन लेती है
होंठों की मुस्कराहटें।
तू जहाँ भी
पाँव रखती है
दारुण-रुदन गूंजने लगता है
नयनों से
नीर बहते हैं।
मृत्यु
तू कठोर है
निर्दयी है
तेरा व्रजपात
जहाँ होता है
वहाँ लुट जाता है
खुशियों का खजाना।
हंसते-खेलते
परिवार के चेहरे
कुम्लहा जाते हैं
वह दहाड़े मारते हैं
छाती पीटते हैं
बार-बार फफकते हैं
कोसते हैं तुम्हें
कि असमय क्यों छीन लिया
उनका कुलदीपक।

ooo

* *हिमालय जैव सम्पदा प्रौद्योगिकी संस्थान, पालमपुर*

# गीत

❑ कृपाशंकर शर्मा ''अचूक''

सिकुड़ गए मुरझा कर रिश्ते, छोटे से दामन में
बरस गया बादल का टुकड़ा, मेरे इस आंगन में
सूखे खेत बिना पानी के
सूरज जो आवारा
धरती कोख कई सालों से
देखे यही नजारा
पनपा एक बीज ना अब तक, ऐसे चाल चलन में
बरस गया बादल का टुकड़ा मेरे इस आंगन में
नलिकाओं से जीवन पलता
प्यासी हैं आशाएं
उम्मीदें तो-रहें झाँकती
सब बदली भाषाएं
उछलकूद सी अन्दर बाहर, हर दिन होती तन में
बरस गया बादल का टुकड़ा, मेरे इस आंगन में
तारतम्य सब उल्टा-पुल्टा
रुख भी मोड़ चला है
अजब अनूठा ढर्रा यहाँ का
साया छोड़ चला है
खड़े कान अब कितनों के ही, दीख रहे जीवन में
बरस गया बादल का टुकड़ा मेरे इस आंगन में
मार पड़ रही महंगाई की
सारी दुनिया सोई
विधि रंग की चंचलता में
जीवन सांसें खोई
भरकम भारी चढ़े चढ़ावा, ईश्वर के दर्शन में
बरस गया बादल का टुकड़ा, मेरे इस आंगन में
ऐसा अवसर दे दो दाता
सब चाहत पूरी हो
इंसा से इंसा मिल जाए
कम मन की दूरी हो
सिर्फ 'अचूक' अकेला चलना, आँधी, भरी तपन में
बरस गया बादल का टुकड़ा, मेरे इस आंगन में

ooo

---

* *38-ए, विजय नगर, करतारपुर, जयपुर*

# ''घोंसला''

❑ राज ''राही''

सुन रहा हूँ किलकारियां
नन्हें नन्हें बच्चों की
आने पर मां के
जिस की चोंच में है
दाना
छीना झपटी में
चोंच लहूलुहान
चिड़िया के
अधरों पर मुस्कान
संतोष
फुर्र से उड़ती वह
और लाने हेतु
दिन भर भटकती
थकान से चूर
चोंच में दाना दबारा लौटती
देखती
तिनका-तिनका बिखरा
घोंसला
बीती थी इस सदी
जिसे बनाते
झड़ गए थे पंख
उन को उड़ना सिखाते
बेबसी और बुझे मन से
देखा था उसने उजड़े
घर को
फिर निहारा था, सूनी-सूनी आंखों से
बच्चों को
जो बना रहे थे
सामने बड़े वृक्ष की विभिन्न-विभिन्न डालों
पर
अपने-अपने घोंसले।

ooo

* नई बस्ती रियासी, वार्ड न. 1 हाऊस न. 4 पिन 182311, फोन 9419156053, 01991-244354

# मैं देना चाहता हूँ तुम्हें

❑ ओम नागर

मैं देना चाहता हूं तुम्हें
एक चम्मच नदी,
एक कतरा धूप
थोड़ी-सी छांव
बस! काफी है तुम्हें
पनपने व खिलने के लिए।
पर तुम हो कि
सूखना चाहते हो,
मिटाना चाहते हो
अपने वजूद को
भूल रहे हो कि
टूटकर भी तो
गिरना ज़मीन पर ही है।

मैं देना चाहता हूं तुम्हें
मुट्ठी-भर आकाश
दो हाथ ज़मीन
चंद कदमों तक हौसला
बस! काफी है तुम्हें
उड़ने व उतरने कि लिए।
पर तुम हो कि-
जड़ बना पालना चाहते हो,
उस पेड़ को
जिसके पत्ते,
तेरे आने से

* संपर्क : 857 सैक्टर-4, केशवपुरा, कोटा-9 (राज.)

पूर्व ही,
बिछ गए राह में
अपना अस्तित्व मिटा।

मैं देना चाहता हूँ तुम्हें
निर्मल झील
झरने का बहता पानी
जलचरों के झुंड

बस काफी हैं तुम्हें
मन बहलाने के लिए।
पर तुम हो कि
सागर से शांत, स्तब्ध
गमों का खारापन ले
नापना चाहते हो
वेदना की गहराई को
जिसमें सिर्फ
उतरना ही उतरना
है मीलों तक।
मैं देना चाहता हूं तुम्हें
थोड़ी-सी हिम्मत
थोड़ा-सा विश्वास
थोड़ा-सा हठ
बस! काफी है तुम्हें
अपने जैसा बनाने के लिए।

ooo

# नदी खामोश है

❒ मोहम्मद मुमताज हसन

नदी
तुम उदास क्यों हो
कि अब नहीं
गर्भ में तुम्हारे/शीतल
जल का स्रोत
मैला हो गया है तुम्हारे
भीतर का स्वच्छ जल
भरा गया है इन्हें/प्लास्टिक
के दुर्गंधयुक्त
कमरे से
छिन गयी है/नदी की शीतलता
वह रूप सलोना
बक्शा था जो प्रकृति ने
तुम्हें कल-कल, निश्छल
बहती जलधारा
उसमें तैरते-कूदते। छप-छप अठखेलियां
करते बच्चों का
समूह/आसपास हरी दूब पर
विचरण करते वन्यप्राणी
अब नहीं आते, पास तुम्हारे।
शहरीकरण और अनियंत्रित
जनसंख्या घनत्व के कारण
सिमट गया है/नदियों का अस्तित्व
छिन गयी है, उसकी अल्हड़ता,
चंचलता,
सूर्य भी मोड़ लेता दिशा अपनी
देखकर नदी की उदास आँखें,
और नदी..... खामोशी के साथ
विवश है, अपना अस्तित्व/समेटने को

ooo

# तुम्हारी चिट्ठियां

❑ मोहम्मद मुमताज हसन

आज
फिर भेजा तुमने
एस. एम. एस. मुझे
जबकि इंतज़ार था तुम्हारी
चिट्ठियों का
लिखे होते जिसमें प्रेमस्पर्शी,
भावनात्मक शब्द
गुनगुनाता जिसे मैं
तन्हाई में प्राय:।
चिट्ठियां - जिन्हें सहेजकर
रखता मैं डायरी के
पन्नों के बीच
डायरी - खुलती है जब-जब
तन-बदन में होता है
एक नयी ताज़गी का एहसास
खिलते चमन के फूलों की तरह
उभरती आंखों में
सूरत तुम्हारी ही
अतीत की यादें/करती परिक्रमा
आंखों के आसपास
और ढूंढ़ता मन-उसे
हैं जो दिल के करीब/फासलों
के दरमियां
प्यार में पागल तुम्हारे।
चिट्ठियां - जिसमें लिखे शब्द
कह जाते, बिन कहे/हाले दिल
तहरीरें - मिटती नहीं शब्दों की
लिखे जाते जो/भावनाओं की
रोशनाई से/जबकि.....
एस.एम.एस. में लिखे शब्द
समेटे नहीं जा सकते
मोबाइल की स्क्रीन पर
क्योंकि .... वहां शब्दों का
अस्तित्त्व नहीं होता

ooo

---

* डॉ. मानो बाबू, रिकाब गंज, टिकारी गया, (बिहार)-824236, मो. 09334226902

# चिट्ठी

❑ सुशील बेगाना

मैं, अपने-आपको
इक दिन,
अकेला, छोड़ कर
घर में
निकल आया
था, चुपके से
गगन की
सरहदें गिनने
उठाए चार ही
पग थे
कलेजा
मुंह को आ निकला
लगा, दिल को
कि शायद ही
गगन को
छू सकूंगा मैं
मगर
दिल-कश फिजाओं ने
मुझे, तसदीक
दे डाली
कि .....
उड़ सकता है
मानव भी
बिना पर के
बिना डर के
मुझे .....
इतनी खबर तो है
बहुत ही
खूबसूरत था
हवा का,
एक वह, झोंका
मुझे, जिसने
उड़ाया था
खबर, किन्तु
नहीं मुझको
कहां, कब
किस तरह पहुँचा
खुली जब
आंख तो, देखा
कि वह दुनिया
पराई थी
न रसमें थीं
न कसमें थीं
मुहब्बत थी, न कोई रिश्ता
चमकते चांद-तारों से
मगर
थी, दोस्ती सबकी
चमकती इस बुलन्दि से
नजर
खुद पर घुमाई तो
मेरा ही
कद, मुझे मुझसे
तनिक
बौना लगा दिखने
किये रफ़्तार के
कुछ आँकड़े
मैंने
इक्ट्ठे जब
सफ़र की भीड़ में
शायद
अकेला पड़ चुका था मैं
मेरे कद ने
खड़ा मुझको
किया था, उस जगह लाकर
यहां से
एक भी सीढ़ी

---

* *संपर्क : 32, बी, भगवती नगर, जम्मू*

मेरे घर को न जाती थी
मिले फुर्सत
तो सोचा है-
कि खुद से मिलके आ जाऊँ
बहुत दिन से
नहीं देखा
है
अपने-आप को, मैंने
बहुत पहले
मुझे खुद ने
लिखा था एक चिट्ठी में
''तुम्हारे बाद
मौसम ने
कोई भी रंग नहीं बदला''
मगर कबसे
मुझे, खुद की
कोई चिट्ठी नहीं आई
मुझे लगता है
शायद मैं,
अभी तक, मर चुका हूँगा।

ooo

## ग़ज़ल

❑ अजय अज्ञात

जो सर झुका के हाथ कभी जोड़ता नहीं
वो जानता अदब का ज़रा क़ायदा नहीं

हर शख़्स का पता हुआ है आज डॉट कॉम
क़ासिद गली-गली में यहाँ घूमता नहीं

है कामयाब शख्स वही दोस्तो यहाँ
सच्चाई की डगर जो कभी छोड़ता नहीं

इंसान उस को दोस्तो कैसे कहें भला
जो दूसरों के हित में ज़रा सोचता नहीं

किस की तरफ ये दस्ते-मुहब्बत बढ़ाएँ हम
रखता किसी से कोई यहाँ वास्ता नहीं

मुश्किल जरूर पेश उसे आएगी यहाँ
सांचे में खुद को वक़्त के जो ढालता नहीं

'अज्ञात' खुद तलाशता है अपना रास्ता
वो दूसरों के नक़्शे-क़दम ढूंढ़ता नहीं

ooo

* म. नं.-37, सैक्टर-3, फरीदाबाद-121003, मो.: 9810561782

# एक क़त्ल

❑ राजीव कुमार त्रिगर्ती

मुझे खबर भी नहीं हुई
और क़त्ल हो गया
मैं खोजता रहा, उस क़त्ल के निशान
बहुत देर तक, गले या सिर पर
और शरीर के दूसरे हिस्से पर
मैं खोजता रहा, ख़ून की धार
कमरे से निकल
पर कुछ न मिला, सड़क के आस-पास
हां कुछ तो हुआ था, आदमी तो मरा था
मेजों के नीचे से, हाथ बढ़ाते हुए
फाइलों से, हिसाब हटाते हुए
झूठे बिल सटाते हुए
खाने पहनने भर की आय से
गाड़ी पर गाड़ी
और महलनुमा घर बनाते हुए
वह आदमी, अन्दर से इतना
क़त्ल हो चुका था
कि बाहर ज़रूरत नहीं थी
किसी निशान की
सिद्ध करने के लिए
उसे मरा हुआ, ज़रूरत नहीं थी
किसी चाकू की
न वो चीखा, इसलिए क़त्ल हो गया
और मुझे ख़बर भी नहीं हुई।

ooo

---

* *गांव लंघू डाकघर गांधीग्राम, वाया बैजनाथ जिला काँगड़ा, (हि. प्र.), मो० 094181-93024*

# एकाकी

मैं थककर हारकर
नीलिमायुक्त झील के किनारे
लहरों के सहारे
बैठा और करता रहा प्रतीक्षा
मछलियों से मित्रता की
मैंने जल में हाथ बढ़ाया
और मछलियों को स्वयं से
दूर होते पाया
मैंने पेड़ों के ऊपर
कलरव में व्यस्त
पक्षियों की ओर
मित्रता का हाथ बढ़ाया
उन्हें भी स्वयं से
दूर होते पाया
मुझे खींचकर ले गया
मेरा स्वार्थ
मछलियों के पास
और मैं
फिर एकाकी ही रह गया।
मैं एक सत्य पर चला
और मित्रता को नि:स्वार्थ समझा
मेरे सामने से एक काफ़िला गुजरा
पर मैं नहीं समझ सका
किसी का स्वार्थ
क्योंकि मेरा स्वार्थ
मात्र मित्रता तक सीमित था
आज
मछलियां और पक्षी
अपने सत्य पर थे
भला, मैं मनुष्य
नि:स्वार्थ मित्र
कैसे हो सकता हूँ ?
और फिर मैं
एकाकी ही रह गया।

०००

# 'नियमन प्रकृति का'

❒ कान्ता शर्मा

हे प्रकृति!
कितना अद्‌भुत है
तुम्हारा यह
पल-प्रतिपल
रंग बदलता
किसी कदर चिरन्तन
परिवर्तनीय स्वरूप ?
किसी को नहीं अखरता
तुम्हारा यह
निष्पक्ष भाव से
लगभग सदा
स्वीय सुरम्य स्वरूप से
हर किसी को लुभाना,
या फिर सहसा कभी
स्वीय भयावह स्वरूप से
हर किसी को सह पाना;
सदा सर्वदा ही
सहज स्वीकार्य लगे
नैतिक स्तर पर
तुम्हारा यह न्याय।
हे समदर्शिनी प्रकृति!
जाने कहाँ से-
कटिबद्ध हो
तनाव की प्रक्रिया।
सन्तप्त हृदयों को
आक्रान्त करने का
यह सिलसिला
ही तो
सम्भवतः हावी हो
सब पर
उपराम भाव के रूप में।
समस्यात्मक मनःस्थिति से
निज़ात पाना
असम्भव सही,
काश! जग में जनसामान्य
चाहे जैसे भी हो
महज़ कर सके
कुछ सहज हो
जीने का सद्‌प्रयास।
संघर्षरत रहते हुए
मंझधार में ही कहीं
डूब जाने का भय
भले त्रस्त करे
जीवन-नैया को,
सांस के रहने तक
आस रूपी अहसास
औ' आत्मविश्वास
की ही तो
सम्भवतः पहुँच हो
सागर के उस पार।

ooo

# 'सन्त्रास बनाम आस'

जाने क्यों
सतत् संघर्षमय
सामयिक परिवेश में
सताने लगीं
निराधार चिन्ताएँ ?
अपने आप से ही
उदासीन मन को
अक्सर जाने क्यों
जीवन लगे उलझन ?
भोगे हुए यथार्थ में
काश! अनुभूत हो पाता
कहीं कुछ स्पृहणीय
जो सुझा सके
इस कशमकश भरे
जीवन का
सार्थक अर्थ।
काश! सर्वदा ही
विरत रह पाए
जग में जनसामान्य
उस अर्थहीन उद्वेग से
जिसके चलते
जनसामान्य को
स्वकीय अस्तित्व से
विमुख करने हेतु
सीख ली तुमने
निष्पक्ष निर्णय की
यह अनूठी कला
जिसे देखते रहे
महज़ हसरत से
हम साधारण जन!
हे मायाविनी प्रकृति!
ऐसा लगता है
स्वीय स्वरूपों का
माध्यम अपना
सुख-दुख का प्रतिरूप बन
हर किसी की
तितिक्षा की परीक्षा
लेती हो तुम;
परीक्षक के रूप में
तुम्हारा यहाँ
अवतीर्ण होना
जितना सहज है,
स्रष्टा की रचना
मानव का
इस परीक्षा में
उत्तीर्ण हो पाना
उतना ही असम्भव प्रायः।
हे प्रकृति!
यदि ऐसा न होता तो
प्राकृतिक असन्तुलन से
अनजाने में ही
शनैः शनैः
सर्वत्र पर्यावरण में
भला कैसे
सन्निहित को पाता
ज़हरीली हवा का
इतना संक्रमण
जिसके विस्फोटक स्वरूप को
शिद्दत से ही
महसूस रहे सब
असुरक्षा के आलम में।
काश! इस अपरिहार्य समस्या का
सुझा पाता
कोई यहाँ
अचूक सर्वमान्य परिहार
सन्त्रस्त जनतन्त्र का
उन्नायक बन कर
तुम्हारी तरह।

ooo

# आज

❑ कुहेली भट्टाचार्य

अतीत की खुशबू,
नदी, समुद्र, झरने,
सपने, हरित दिशाएँ,
सब हैं मेरे साथ
पर
मैं अतीत में नहीं,
वर्तमान में हूँ
नहीं मैं भविष्य के
रंगीन सपनों में
आशा निराशाओं में
जिससे भरा है
भविष्य का आसमान
बस मैं वर्तमान में हूँ।
मैं केवल मात्र आज हूँ
आज मैं हूँ,
मेरी उड़ान वर्तमान तक ।
मेरा आकाश भी,
मेरा सपना भी।
कर्कश सत्य की
तपिश मैं।
मेरा वर्तमान और मैं
इस कठिन सत्य के साथ
मैं जी रही हूँ
जीना चाहती हूँ
स्वीकार करना चाहती हूँ
जो सत्य है।
मैं धरती की चहेती हूँ
बार बार आज
केवल आज में
मेरे अस्तित्व को
मैं करीब पाती हूँ।

ooo

---

* *सम्पर्क : ए-123, सुन्दर अपार्टमेंट, जी. एच-10, नई दिल्ली-87*

# ''संदेश''

❑ हरचरन सिंह सूदन

प्रात: काल की
मनोहर किरणें
छुपकर
घर के, आँगन से
कक्ष के, झरोखों पर
ताकती-झाँकती हैं।
दिवारों की
खिड़कियों से
आर-पार होकर
गहन निद्रा में
सोई आंखों को
उठाती-जगाती हैं।
उनके
स्पर्श मात्र से
खुली आंखें
इस हसीन
दुनियाँ को
निहारती हैं।
अब
जब कक्ष के
चारों ओर
प्रकाश है
और कहीं, कहीं अंधेरा
तब वह
मानो कहती हैं
उठो
हुआ
ज़िन्दगी का सवेरा!
मन में
प्रात: काल का
उल्लास भरा
कहीं नहीं
है निराशा!
जिन्दगी को
जिओ
भर के उमंग और
मन में आशा!
फिर जाते हुए
सुनहरी-सुनहरी किरणें
सिखलाती हैं
कि
हर दिन, एक नया सवेरा है
एक नया सवेरा है
एक नया अवसर है
कुछ कर गुजरने का।
आलस्य का
त्याग करके
मेहनत की
राह पकड़ के
लग्न की
डोर थाम के
आगे बढ़ने का!
बिना किसी
फल की
इच्छा किये
ज़िन्दगी को
हर्ष से
आनन्द से
गौरव से
जीने का।
प्रात:काल की
रमणीक
मनोहर किरणें
ऐसा एक
सुनहरा-सा
''संदेश''
हम को
देती हैं।

ooo

* सम्पर्क : 69/11 निकट गुरु द्वारा, पुरानी रेलवे लाइन, आर० एस० पुरा, जम्मू-101102, मो. 09419624278

# आज़ादी

❑ डा० गुरु प्रसाद शर्मा

कल रात सपने में दिखी मेरी दादी
बोली-बेटा देश की हालत
क्या बना दी ?
मैं थी तो यह, भ्रष्टाचारी तो न थी,
पढ़ लिखके भी यूँ, बेरोज़गारी तो न थी,
पैसे की हर तरफ, मारामारी तो न थी,
भारत की जनता यूँ, बेचारी तो न थी,
तब की माँ ऐसे, कुंवारी तो न थी,
लड़कों से लड़कों की, दिलदारी तो न थी,
लोग ऐसे न थे, ऐसी
चोर बाज़ारी तो न थी,
हर दिन एक नई, महामारी तो न थी,
आज़ाद हो के तुमने
मंहगाई बढ़ाई और बढ़ाई आबादी
क्या यह थी तुम्हारी असली आज़ादी ?
बोली-
मनाओ, इन सबका जश्न मनाओ
जिन वीरों ने शहादत दी,
उन्हें भूल जाओ, भूल जाओ मुझे,
मैं हूँ आज़ादी
भूल जाओ कि थी एक बूढ़ी दादी
इस तरह ही आज़ादी मनाओगे
तो रोना पड़ेगा
सब कुछ खो चुके हो तुम
मुझे भी खोना पड़ेगा.....॥

ooo

* संपर्क : वार्ड न : 15, पटेल नगर, कठुआ, (जम्मू-कश्मीर), मो : 9419150711

# महफिल

❑ अर्पिता सक्सेना

ये महफिल दूर से देखो, बड़ी जगमग सी लगती है,
कि इसके रंग की चमचम, नज़र को खींच लेती है।

जरा-सा पास आकर देखिये, महफिल की ये रौनक,
अंधेरे दिल के गलियारों से, लपटें भी निकलती हैं।

और इस आग में जलते हैं, न जाने कितनों के अरमां
हों चाहे खुद के या औरों के, बस कुछ राख बचती है।

जुबां थी जिसकी मिश्री सी, उसी के दिल की ये हालत,
तड़पते देखती हूँ सच को, तो ये जाँ निकलती है।

रूत के बदलने से भी पहले, दिल बदलते हैं।
नज़रिये से भी जल्दी लोगों की, नज़रें बदलती हैं।

छलकते जाम हैं महफिल में, पर पैमाने खाली हैं,
दिखावे की ये नगरी है, यहाँ कब सांझ ढलती है।

लहू का रंग मैला हो गया, रिश्तों का क्या कहना।
स्वार्थ के ही कंधों पर, प्रेम की अर्थी निकलती है।

कहें क्या हाल महफिल के गुलाबी नूर के पीछे,
काली स्याह से गाढ़ी कलाई, झाँक लेती है।

खुदाया देख ले आकर नज़ारा अपनी महफिल का,
तुम्हारी ही ये महफिल, और तुम्हीं को आज़माती है।

०००

नवांकुर

# एक टुकड़ा आसमान

❑ अरविन्द शर्मा

'1'

मैं
अकसर अपने बिछौने पर लेटा,
खिड़की से बाहर झाँकता हूँ,
निहारता हूँ
घड़ियों तक
एक टुकड़े आसमान को!
हाँ
एक टुकड़ा
जो कभी नीला, कभी काला
और कभी नारंगी छटा वाला,
होता है,
लिए होता है
हर पहर, एक नई ओढ़नी
पर सदा वहीं होता है,
अब,
अनायास ही
एक संबंध बन चुका है
उससे मेरा
ऐसा संबंध
जो शब्दों पर आश्रित नहीं
जिसकी अनुभूति
हर किसी के भाग्य में नहीं,
वह मेरे साथ हँसता नहीं,

---

* *132, रघुनाथ पुरा*

न ही बतियाता है,
पर
मैं चला जाऊँ गर
तो पहरों प्रतीक्षा में बीताता है,
कभी सावन की नन्हीं बूँदें
और कभी शीतल पवन भेजी है उसने मुझे,
शायद यही तरीका है उसका
अपनापन जताने का,
यह रिश्ता निभाने का
वह जानता है,
मैं तुच्छ हूँ,
भला उसके समक्ष,
मैं कहाँ कुछ हूँ
किंतु
यह अडिग अपनत्व
एक प्रेरणा स्रोत
विश्वास के एक पंछी का
आजीवन बसेरा है,
यही सोच खुद को धन्य समझता हूँ
कि इतनी बड़ी सृष्टि में
एक टुकड़ा आसमान तो मेरा है!

'2'

वक़्त में
कहीं,
एक नुक्कड़ वह था,
जब मैं,
अपने बिछौने पर लेटा
निहारा करता
एक टुकड़े आसमान को.....
और
एक यह है
जब कोई दीवार नहीं
खुले गगन तले,
झूमता फिरता हूँ
स्वछंद

पक्षियों संग उड़ता
खिले बागानों में नाचता,
बादलों से मिलकर बरसता हूँ
धरती की सौंधी गँध में घुल जाता हूँ
लेकिन,
यह संपूर्णता संपूर्ण नहीं,
घुन लगी है,
और मेरा मन
पानी में सीप-सा प्यासा,
कि अब
इतने बड़े आसमान में
खो चुका
नज़र नहीं आता
मेरा प्यारा,
एक टुक़ड़ा आसमान का.....

ooo

व्यंग्य

# श्वान कथा

❒ सीताराम गुप्ता

हमारी कॉलोनी में कई संभ्रांत परिवार रहते हैं। उनमें से अधिकांश के पास 'जैकी', 'रोज़ी' अथवा 'टाइगर' अवश्य होता है। वास्तव में जिन परिवारों में एक 'जैकी', 'रोज़ी' अथवा 'टाइगर' होता है वही संभ्रांत परिवारों की श्रेणी में आते हैं। संभ्रांतता का प्रतीक है 'जैकी' अर्थात् एक अदद कुत्ता। ऐसे संभ्रांत परिवार या परिवार का कोई सदस्य या नौकर जब भी घर से बाहर क़दम रखता है अपने प्रिय 'जैकी' अथवा 'रोज़ी' को साथ ले जाना नहीं भूलता। जिस प्रकार गाड़ी चलाने वाले के लिए मोटर ड्राइविंग लाइसेंस, कार्यालय में काम करने वाले के लिए आइडेंटिटी कार्ड अथवा परीक्षा में बैठने वाले के लिए रोल नंबर की ज़रूरत होती है; एक संभ्रांत पुरुष अथवा महिला को अपनी सही पहचान बनाए रखने के लिए 'रोज़ी' अथवा 'जैकी' को साथ रखना अनिवार्य है।

सुबह दूध की लाइन में लगते समय 'जैकी' की ज़ंजीर हाथ में हो अथवा 'रोज़ी' का साथ हो तो दूध की ख़रीदारी का मज़ा ही और है। लोगों पर आपका और आपके 'जैकी' या 'टाइगर' का इतना रौब पड़ता है कि आपको देखकर लोग काई की तरफ फट जाते हैं और आप लाइन में जहाँ चाहें आराम से खड़े हो सकते हैं। इसमें आप दोनों के रौब के साथ-साथ कुत्ते के भय का प्रभाव ज़्यादा काम करता है। दुकानदार भी प्राय: ऐसे संभ्रांत ग्राहकों को जल्दी निपटाने का प्रयास करते हैं क्योंकि दुकान के सामने पहुँचकर ही इनके श्वान महाशय को लघुशंका अथवा दीर्घशंका की हाजत होती है।

वैसे तो हमारे यहाँ लोग आपस में बहुत कम मिलते-जुलते हैं क्योंकि ऊपर वाला नीचे वाले को नहीं जानता तथा दाएँ वाला बाएँ वाले को नहीं पहचानता लेकिन वो लोग जिनके हाथों में अपने-अपने जैकियों की ज़ंजीरें बँधी होती हैं घंटों सड़कों के किनारे खड़े अपने-अपने जैकियों की कुलीन नस्लों की विशेषताओं पर प्रकाश डालते रहते हैं। श्वानों की विभिन्न नस्लों और प्रजातियों के साथ-साथ बदलते मौसम में इनकी देखभाल और उपयुक्त आहार पर भी विशद् चर्चा इन सेमिनारों में की जाती है। देश के नागरिकों को एक सूत्र में बाँधने में सहायक है श्वान की ये विभिन्न प्रजातियाँ।

---

* *सम्पर्क : ए. डी.-106-सी, पीतमपुरा, दिल्ली-110088, फोन नं. 2731954*

जितने खूबसूरत या ख़तरनाक कुत्ते उतने ही खूबसूरत या ख़तरनाक इनकी प्रजातियों और कुत्तों के नाम भी। कुछ नस्लों के नामों पर ग़ौर फरमाइये : ग्रेट डेन, डैश हाउण्ड, बेसेंट हाउण्ड, डाल्मेशियन, अल्सेशियन, सेंट बर्नार्ड, लेब्राडोग रेटरिवर, डॉबरमैन, बुलमास्टिफ, इंग्लिश कोकर स्पैनियल, जर्मन शेपर्ड, आयरिश वुल्फ, फ्रैंच बुलडॉग, बॉक्सर, न्यू फाउण्डलैंड, शिवावा, पिकनीस, बीगल्स, फ़िटमी, स्पिट्ज़, चोचो, लासा एप्सो, चीहुआहुआ तथा और न जाने कितनी प्रजातियाँ और नस्लें। ग्रेटडेन या बुलडॉग नाम से भय लगता है। ऊपर से 'टाइगर' नाम रखकर रही-सही कसर भी पूरी कर दी। पामेरियन नस्ल की ख़ूबसूरत मादा का नाम रोज़ी रख दिया जाए तो नस्ल के साथ नाम में भी नज़ाकत और नफ़ासत का अहसास होता है।

अब सिलेब्रिटीस और उनके डॉग्स के बारे में भी थोड़ी चर्चा हो जाए। पिछले दिनों पैरिस हिल्टन सबसे ख़राब सिलेब्रिटी कुत्ते की मालकिन चुनी गई जबकि सबसे अच्छी सिलेब्रिटी कुत्ते की मालकिन का खिताब मिला ब्रिटिश सिंगर ज़ॉस स्टोन को। ज़र, जोरू और ज़मीन पर जंग छिड़ते तो देखा है पर पिछले दिनों ब्रिटनी स्पीअर और पेरिस हिल्टन के बीच अपने-अपने कुत्तों को लेकर जंग छिड़ गई। ब्रिटनी स्पीअर ने कहा कि उसके 'बिट-बिट', 'लेसी-लू' और 'लकी' नामक तीन चीहुआहुआ कुत्ते पेरिस हिल्टन के टिंकरबैल से ज़्यादा क्यूट हैं। मुझे कुत्तों के बारे में इतनी अधिक जानकारी होते हुए भी ये नहीं बता पाया कि टिंकरबैल कुत्ते का नाम है या प्रजाति।

एक बार एक ख़ूबसूरत बला के हाथ में एक पिल्ले की ज़ंजीर देखकर मैंने कुत्तों सम्बन्धी अपने ज्ञान का प्रदर्शन करने के लिए कहा, ''आपका 'पामेरियन' तो बड़ा खूबसूरत है!'' अपनी ख़ूबसूरती की ग़ाज़ गिराते हुए नाक-भौं सिकोड़कर उसने कहा, ''पामेरियन! नो-नो, इट'ज़ नोट पामेरियन बट अमेरिकन प्राइड'' और मोनिका अकड़ती हुई चली गई पर मेरी सिट्टी-पिटटी गुम हो गई। मुझे पता चल गया कि कुत्तों के मामले में मैं कितना अनाड़ी और अल्पज्ञानी हूँ।

वे लोग जिनके यहाँ 'जैकी' या 'रोज़ी' नामक प्राणी मौजूद होता है बड़े प्रगतिशील विचारों के होते हैं। प्रेम-व्रेम के मामले में अपने बच्चों की चॉयस में दख़लंदाज़ी नहीं करते लेकिन क्या मजाल कि उनका 'जैकी' किसी देसी कुतिया की तरफ़ आँख उठाकर भी देख ले, उनकी 'रोज़ी' किसी लोकल कुत्ते के साथ मुँह काला करके घर में घुस आए। खुद सारी सर्दियों खों-खों करते फिरेंगे, लालइमली के मटमैले मफलर से टपकती नाक को रगड़-रगड़ कर बंदर-सी लाल कर लेंगे लेकिन डॉक्टर के पास जाने का नाम नहीं लेंगे पर क्या मजाल कि अपने 'जैकी' या 'रोज़ी' को हिचकी भी आ जाए। छींक आना तो दूर की बात है। जरा सी सर्दी हुई नहीं कि जैकी का शाम के बाद घर से बाहर निकलना बंद। 'जैकी' या 'रोज़ी' को सीने से लगाए सारी रात रज़ाई में गुज़ार देंगे। जैकी या रोज़ी चाहे जितना भी कुनमुनाएँ उनकी पकड़ ढीली नहीं होती। कैसा अद्भुत प्रेम है मानव का श्वान के प्रति। काश! गलियों में घूमने वाले असंख्य आवारा कुत्तों के नसीब में भी ये सब होता।

आजकल जिस प्रकार ज़ुकाम, बुख़ार, पेटदर्द आदि का इलाज करने वाले डॉक्टरों की अपेक्षा कार्डियोलॉजिस्ट (जिनकी फीस सुनकर दिल दहल जाता है) अथवा ई.एन.टी. विशेषज्ञों (जो नाक, कान व गले की शल्य चिकित्सा करने की अपेक्षा मरीज़ का नाक, कान व गला काटने में ज़्यादा सिद्धहस्त हैं) की बाढ़ आई हुई है उसी प्रकार सामान्य पशुचिकित्सकों की अपेक्षा श्वान विशेषज्ञ बहुतायत में मिलते हैं। स्त्रीरोग विशेषज्ञों ने जहाँ सुरक्षित गर्भपात केन्द्र खोलकर इस क्षेत्र में क्रांति ला दी है वहीं उत्साही महिला श्वान-चिकित्सकों से अपेक्षा की जाती है कि वे श्वान प्रसूतिकेन्द्रों के साथ-साथ श्वान गर्भपात केन्द्रों की भी स्थापना करें।

श्वान-चर्चा चली है और गधों का भी ज़िक्र आ गया है तो अपने एक श्वानप्रेमी मित्र के जीवन की एक घटना का वर्णन करूँगा। एक दिन जब सुबह-सुबह मित्र मेहर सिंह अपने प्रिय बुलडॉग के साथ घूम रहे थे तो उनके पुराने साथी जौहर सिंह मिल गए। जौहर सिंह छूटते ही बोले, ''अरे सुबह-सुबह इस गधे के साथ कहाँ जा रहे हो?'' मेहर सिंह ने कहा कि ये क्या कह रहे हो? ये गधा नहीं कुत्ता है। इस पर जौहर सिंह ने कहा, ''अबे चुप! तुझसे कौन कमबख़्त बात कर रहा है?'' कुत्ते की ओर इशारा करते हुए उसने कहा कि मैं तो इससे पूछ रहा था।

मेरे एक मित्र मुझ जैसे निरीह प्राणी से तो विशुद्ध हिंदी में वार्तालाप करते हैं लेकिन अपने 'सिल्की' से सारी गुफ़्तगू अंग्रेजी में ही करते हैं। प्योर अमेरिकन इंग्लिश में। जब भी मुझसे मिलने आते हैं 'सिल्की' को साथ लेकर ही आते हैं और आते ही आदेश देते हैं कि 'सिल्की' के आराम करने के लिए चारपाई पर एक मुलायम-सी चादर बिछा दो। 'सिल्की' के लिए अपेक्षित व्यवस्था होते ही 'सिल्की' को संबोधित करेंगे, ''सिल्की गेट इन टू दि बेड एंड रिलैक्स।'' और सिल्की एक आज्ञाकारी बच्चे की भाँति चुपचाप आँखें बंद करके सोने का उपक्रम करने लगती है। एक बार मैं इन मित्र को एक कार्यक्रम के लिए आमंत्रित करने गया। मैंने कहा कि आप चारों सादर आमंत्रित हैं। इतना सुनते ही मित्र आपे से बाहर हो गए और गुस्से में पूछा, ''एंड व्हाट अबाउट सिल्की?'' मैंने किसी तरह बात संभाली। ये महाशय खुद तो साइकिल पर ही आते-जाते हैं लेकिन 'सिल्की' को भाभी जी कार में घुमाने ले जाती हैं। दरअसल कार ली ही 'सिल्की' के लिए है।

कुत्तों, मोटरगाड़ियों तथा पार्कों का भी गहरा आपसी रिश्ता है। शाम के समय पार्कों में नवविवाहिताएँ जहाँ अपने पतियों के हाथों में हाथ डाले घूमती नज़र आती हैं वहीं अनेक विवाहाकांक्षिणी नवयौवनाएँ अपने-अपने जैकियों की ज़ंजीरें थामें इस कमी को दूर करने का प्रयास करती नज़र आती हैं। कुछ अधिक भावुक क़िस्म के युवक अपनी 'रोज़ी', 'स्वीटी'

या 'लकी' को गोदी में उठाकर ही मोटरगाड़ी से बाहर निकलते हैं और जब तक पार्क की मखमली घास की नर्म-मुलायम चादर तक न पहुँच जाएँ उसे गोदी से उतरने ही नहीं देते।

जिन संभ्रांत लोगों के पास कारें नहीं होती हैं वे अपने-अपने श्वानों को स्कूटर पर ही सुबह या शाम की सैर कराने ले जाते हैं ठीक उसी प्रकार जैसे बंदर का तमाशा दिखाने वाले अपने एक जोड़ी बंदरों को साइकिल के कैरियर पर बिठाकर अपने कर्मक्षेत्र तक ले जाते हैं लेकिन कहाँ राजा भोज और कहाँ गंगू तेली। एक श्वान स्वामी की तुलना एक कलंदर से कभी नहीं की जा सकती।

ooo

# गीत

❑ बृजमोहन

संग-संग चलें, संग-संग डोलें।
हम भारत मां की जय बोलें॥
तम से ज्योति की ओर चलें,
हम झूठ से सच की ओर चलें,
मृत्यु से चलें अमृत की तरफ
संकल्प से अपने न डोलें।
संग-संग चलें ....
निश्चय हों अपने इक जैसे,
मन स्नेह भरें हो इक जैसे,
हों भाव कार्य सब इक जैसे,
जब बोलें मधुर वचन बोलें
संग-संग चलें ....
मिल कर भोगें-हिल-मिल के रहें,
फूलों की भांति खिल के रहें,
पराक्रमी बनें-तेजस्वी बनें
हम मन से मलिनता को धो लें
संग-संग चलें, संग-संग डोलें
हम भारत मां की जय बोलें

**(वेद की ऋचाओं पर आधारित)**

ooo

पाकिस्तानी उर्दू कहानी

# एक आदर्शवादी की मौत

❑ अज़रा वकार

कल तक मुझे पक्का विश्वास था कि उस आदर्शवादी की मृत्यु बीस वर्ष पहले हुई थी। किन्तु कल से मुझे संशयों ने घेर लिया है जब मैंने अचानक उसे किताबों की एक दुकान में देख लिया। अधिक वहम मुझे इस बात का था कि बीस वर्ष पहले अगर वह नहीं मरा तो बीस साल पहले मैं निश्चित रूप से मर गई होऊंगी क्योंकि हम दोनों में से किसी एक का मरना लाज़मी था। मृत्यु के लिए शरीर का नष्ट होना आवश्यक नहीं होता इसलिए कई लोग पूरी जिन्दगी मुर्दों की तरह गुज़ार देते हैं।

मैं किताबों की अलमारी के पीछे थी जब वह दुकान में दाखिल हुआ। उसके साथ और लोग भी थे जिनके साथ वह बातें कर रहा था। बीस वर्ष पूर्व उसने किसी निचले देश में राजनीतिक शरण ले ली थी। मेरे कान खड़े हो गए; वह कह रहा था–''अब लड़के-मरने के लिए किसी आदर्श की आवश्यकता नहीं। मानवता का इतिहास अपने अंत को पहुँच गया है। दुनिया की अधोगति हो रही है।''

वह हमेशा से शब्दों का बाजीगर था और अभी तक शब्दों से खेलता था। नई-नई सोच के संग नए-नए शब्द। ढेरों कागज़, उन पर उकेरे गए शब्द, इतने कि आदमी उनमें दब कर रह जाए। गर्वीली फबन! 'ब्याज के, खैरात के।'

वह कह रहा था–''व्यक्ति के अधिकारों की खोज के लिए मैंने एक एन. जी. ओ. खोली है। उसकी बातों से ऐसा लगता था कि विदेश जाकर उसने कोई डिग्री हासिल कर ली है।''

मैंने जल्दी से किताब रैक में रखी और बाहर निकल आई। शुक्र है उसने मुझे पहचाना नहीं। असफलताएं आपसी पहचान को लील जाती हैं।

घर पहुंचते-पहुचंते मुझे अस्मिता के संकट ने घेर लिया! मैंने अपने अस्मिता के बारे में नए सिरे से खोज-खबर लेनी आरम्भ कर दी। मुझे लग रहा था मैं वह जो मैं स्वयं को समझती थी, यदि वह वह नहीं तो फिर मैं मैं नहीं। ना मालूम मैं जी भी रही हूँ या नहीं। यदि उस आदर्शवादी ने नई जून धारण कर ली है तो फिर मैं कौन हूँ ? बीस वर्ष पूर्व वैयक्तिक

---

** जे. 363, सरिता विहार, मथुरा रोड, नई दिल्ली 110076, 987163834*

पहचान के समय यादों के एक पल में जो शब्द बोल गया। इससे पहले कि मैं उसे पहचानती वह हवाओं में विलीन हो गया। मैं समझ ही न सकी।

मूल से पहले क्या था ? पहल से पहले, जब रब रब नहीं बना था, मैं मानव से पूर्व मानव, मैं मानव से पूर्ण ..... अलिफ के आगे मुझे समझ में कुछ न आया, किन्तु आलिफ के आगे मैंने बे बनाया। गृहस्थी, औपचारिक सम्बंधों के शिकंजे। मैं सम्बंधों को सजाती संवारती रही, वह बार-बार मुझे डंक मारते रहे मैं नित नए रूप धारण करती रही। किन्तु वह सम्बंधों का, शरीरों का कष्ट नहीं भोगता, न उसकी सगाई हुई, न ब्याह। दुख रिश्तों के ताने-पेट से पैदा होता है। इच्छाओं की कोठड़ी में से, भोर की उम्मीद में से। मैं इन संबंधों को पवित्रता से बांधती हूँ कभी प्रेमिका के रूप से श्रृंगार कर के बैठती हूँ। मेरे गालों पर भंवर बनती है, क्योंकि मेरे भीतर सच्चाई है। कोई मेरी आँखों-में-आँखें नहीं डाल सकता।

यह तब की बात है जब हर ओर क्रांति की बात हो रही थी। मैंने बचपन से ही गरीबी की मार झेली है। इसी की मस्ती और गर्व में रहती। गरीब होना तो कोई अनोखी बात नहीं मिलजुल कर आदमी पार हो जाता है। मैं तो बेसहारा भी थी, बेघर बेदर। मुझे कोई पूछता नहीं था। कोई मुझ पर अधिकार जमाने वाला नहीं था। मेरे भीतर क्रांति की ओर आकर्षित होने की पूरी अलामतें थीं। सभी शर्तें पूरी हो रही थीं। उन्हीं दिनों मेरी मुलाकात उस आदर्शवादी से हुई थी। उसकी बातों पर मुझे विश्वास न हुआ कि मेरे सपने इतनी जल्दी पूरे हो सकते हैं, उनका यथार्थ इतना पास हो सकता है। वह बातें करता था क्रांति की, समय को बदलने की, बिलोचिस्तान के पहाड़ों के मध्य गुरिल्ला युद्ध करने की। व्यवस्था को भंग करने की। हम दोनों ने मिलकर काम करने के मंसूबे बनाए। एक प्रसिद्ध लेखक की भांति मिलकर लिखने का कार्यक्रम भी बनाया। भूख की मारी हुई मैं क्रांति को समर्पित हो जाना चाहती थी।

उन दिनों क्रांति विश्वविद्यालय के होस्टल, स्टडीसर्कल, या पार्टी दफ़्तर में दिखाई देती थी। पीली आंखें, चरस के कश और उन्मुक्त यौन संबंध।

बीस वर्ष पूर्व हमारे एक सांझे मित्र ने मुझे बताया कि वह किसी पश्चिमी देश में राजनैतिक शरण लेने के लिए चला गया है। उसके साथ कोई क्रांति की दीवानी भी थी। जनता शायद दूसरे देशों में से थी। हमारे मासूम आदर्शवादी ने उसकी ओर भी रुख किया। क्रांति दो फाड़ हो गई।

उस दिन मुझे अपना वजूद उस भिखारी की भांति लगा जो जीने के लिए दूसरों से टुकड़े मांगता है। वह वेश्या जो दिन पूरे करने के लिए पुरुष की मोहताज है। जिसके पास आकर पुरुष एक रात की खुशी, एक रात का मुजरा, एक रात का इन्कलाब मांगते हैं। मैं दो व्यक्तित्वों में विभाजित हो गई, एक हरा, एक लाल।

पश्चिम ने धीरे-धीरे हमारा सच छीन लिया है। वह हमें असीम विकास का नज़ारा दिखाना चाहता है। हमें वहां के इत्र और शराब चाहिए। हमारी अपनी सभ्यता यन्त्रों में बिखर रही है। थोथे शब्दों द्वारा हवाई ज्ञान हमारे भीतर को ढक रहा है। अर्थ बहुत पीछे छूट जाते हैं, अर्थ शब्द से इलम हो गया है। कई जगह शब्द लुप्त हो गए हैं। सारी जनता अनुमान और भ्रम के छाते के नीचे चलती है। संक्षेप में यह सारा ज्ञान एक-सा है। सब की वास्तविकता एक है। पूरा विश्व एक है। समझने के लिए हम सम्पूर्ण चित्र के टुकड़े-टुकड़े कर लेते हैं।

एक ओर उच्चवर्ग उन्हीं की नकल करते हुए। हमारी जनता को चाट गया है। हम खुद को दुनिया की नजरों से देखते हैं। हमें अहसास कराया जाता है कि हम मानवीय गुणों से वंचित हैं। अपनी औरतों, बच्चों के साथ ठीक से व्यवहार नहीं करते। मज़हबी और आपराधिक जत्थेबंदी की ओर से राजनैतिक लाभ उठाते हैं। इस तरह हम एक कौम बनने में असफल हो गए हैं।

दूसरी ओर क्रांति हम से रूठ गई है। आदर्शवादी ने ''कैपिटल'' जेब में डाल रखी है। अपनी पहचान के लिए हरे पत्तों के साथ मिलकर हरा हो गया है। भीतर से लाल ऊपर से हरा, किन्तु भीतर से लाल भी कहां रहा। मोथरे और जंग लगे शब्दों के साथ लड़ाई नहीं लड़ी जा सकती।

एक ओर से आवाज आती है एशिया हरा है दूसरी ओर से आवाज़ आती है एशिया लाल है। मेरे भीतर से आवाज आती है एशिया संकट में है। इधर नर्क, ऊपर स्वर्ग, बीच में प्रतीक्षा की पीड़ा। एशिया वस्तुओं की मंडी है। बहुराष्ट्रीय कम्पनियों ने यहां पर निवेश किया हुआ है। वह एशिया को हाथ से क्यों जाने दें। आज वैश्वीकरण की बातें होती हैं। सारा माल, सारी मंडी काबू रहने के लिए एक गांव तो तभी बने जब इसके ऊपर कोई नियंता न हो। कोई गुलाम न रहे, कोई न्यायाधीश, कोई न्यायालय, गवाह, पुलिस न रहे, कोई भेदभाव न रहे। सभी आत्मनिर्भर से प्यार की एक रस्सी मे बंधे हुए। मोहब्बत के रिश्तों में भीगे हुए। किसी से घृणा न करें। कोई किसी पर जुलम न करे, सभी लोग हर तरह के बंधनों से मुक्त हो जाएं। समय एवं अलगाव के बंधनों से भी। हर कोई खुद अपना मालिक हो कोई किसी के पर्दे के भीतर न झांके।

मेरा ख्याल है शायद मैं जीवित हूँ। सोच सीधी-सीधी पंक्तियों में आगे से गुज़र रही है। फिलहाल हम सभी जीवित हैं। मैं भी! वह आदर्शवादी भी और क्रांति भी। सच बात तो यह है कि हम अपने मुर्दा वजूद को एक-दूसरे से छिपाते फिर रहे हैं।

**अनु० केवल गोस्वामी**

ooo

# 'सुकीर्ति' की मौलिक पहचान करवाती कविताएँ

❑ डॉ. रमेश सोबती

सद्य प्रकाशित काव्य संग्रह 'अनुगूँज' में कवयित्री सुश्री सुकीर्ति भटनागर ने अपने आसपास के परिवेश के प्रभाव, निजी संवेदनाओं की सच्चाई और हृदय के भावों को तीस छंदमुक्त तथा तीस छन्दोबद्ध कविताओं के माध्यम से प्रस्तुत किया है। प्रथम कविता 'अनुगूँज' में कवयित्री का बचपन साफ झलकता है। अत: वह अपने अतीत की धरोहर को सहेज कर रखना चाहती है–

''बाहा दूँ/दुलार का अपार जल/उसके चरणों में/भर दूँ/उसका छोटा-सा मन/विश्वास, स्वाभिमान और/जीवन-शक्ति के अमृत से/पहचान दूँ उसके अस्तित्व को/जो/'अनूगूँज' बन दोहराती रहे/इस शाश्वत सत्य को/कि नारी/अबला नहीं, हेय नहीं, तिरस्कृत नहीं/वह तो/परम शक्तिशाली और वंदनीय है।'' (पृष्ठ 35)

अपने गहरे आत्मचिंतन तथा मन में उठने वाले भावों को प्रभावशाली भाषा-शैली में बड़े सुरुचिपूर्ण ढंग से प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। वर्तमान के व्यस्ततम परिवेश में कवयित्री जब अपने अतीत, वर्तमान और भविष्य पर चिंतन करती है तो उसके मन में भावानात्मक कई प्रश्न उठते हैं। उनमें वे अपने संशयों तथा प्रश्नों के उत्तर भी स्वयं तलाश लेती है और उनका सजीव चित्रण इस कृति में बड़ी सहजता से करती हैं। सुश्री सुकीर्ति जी अपने अनुभवों, विचारों और भाववेगों को लगातार पिरोती चली जाती हैं। बदलती हुई मान्यताओं के प्रभाव से उठती अभिलाषाओं तथा आकांक्षाओं के माध्यम से मन को दिशाहीन कर देना, विगत की यादों में खो जाना, वर्तमान से सम्मोहित होना और भविष्य की चिंता की अभिव्यक्ति इस संग्रह में कुशलतापूर्वक की गई है। उनकी छंदमुक्त कविताओं में प्रवाहमयता कहीं भी बाधित नहीं हुई है। वे मूलत: यथास्थितिवादी हैं। परिस्थितियों का यथावत् चित्रण उनकी कविता को विश्वसनीयता प्रदान करता है। 'वेदना' कविता में कवयित्री ने जीवन-दर्शन का यथार्थ रूप उतारते हुए एक निर्दोष पंछी की वेदना का भयप्रद साक्षात्कार करवाते हुए अपने काव्य-कौशल का दिग्दर्शन कराया है–

''ओ निर्दोष पंछी/कसाई की मुट्ठी में भिंची तेरी कोमल ग्रीवा/और/घुटी-दबी चीखें के बीच/असहनीय पीड़ा को झेलती/तेरी देह की वह तड़प और कातर आँखें/मुझे अब तक याद हैं।''

---

** एन. आर. आई. एवेन्यू, सुखचैन रोड, फगवाड़ा-144401 (पंजाब)*

''ऐसा अमानुषिक आचरण/स्वतंत्रता का पर्याय नहीं।/काश!/चरितार्थ हो पाती/जियो और जीने दो की परिभाषा/तो जीना सहज हो जाता।'' (पृष्ठ 41-43)

इस संग्रह में मन को अनायास व्याकुल करने वाली घटनाओं की अभिव्यक्ति इतनी मर्मांतक है कि वे काव्य संवेदना भाषिक संयम से जुड़ कर सार्थक और सजीव हुई है। संकल्पशील कवयित्री में अभिव्यक्ति के खतरे उठाने एवं दृढ़ता स्पष्ट दिखाई देती है, वे उनकी रचनाधर्मिता में ऐसा स्वप्नलोक छोड़ जाते हैं जो आधुनिक कविता में बहुत ही कम पढ़ने को मिलता है। निरापद और अत्यंत आश्वस्तिदायक संसार को हमेशा खो देने की सतत पीड़ा बोध अपनी चरम सीमा तक उनकी कविताओं में गुंजायमान है-

''उस दिन/फिर से देखीं वे सड़कें/जिन्हें देख/अनायास किलकने लगा मेरा अतीत/और/माता-पिता के ओझल हुए चेहरे/कल्पना के पँख लगाए मुस्करा उठे/भाई-बहनों की याद कचोटने लगी मन को/और/समय की शिला तले दबी/अपनी नन्हीं-सी पहचान को/वहीं कहीं आस-पास/ढूँढ़ती सिसक उठी मैं।'' (पृष्ठ 44)

'अनुगूँज' की छंदमुक्त कविताओं में सुश्री भटनागर जी की व्यग्रता मुखरित हुई है। ऐसा लगता है यह व्यग्र-भाव उनकी कविताओं का मानो स्थाई-भाव हैं। इस कृति की कवयित्री की इन कविताओं को पढ़ते-पढ़ते मुझे अनायास मुक्तिबोध की 'अंधेरे में' की कविता फ्लैश की तरह सामने आती है। नरेश मेहता इस व्यग्रता को 'अवधूतता' के रूप में देखते हैं, तो डॉ. नामवर सिंह इसे 'परम अभिव्यक्ति की खोज' का भाव समझते हैं। मज़े की बात यह है कि डॉ० रामविलास शर्मा इस व्यग्रता को 'आस्तित्विक भाव' के रूप में ग्रहण करते हैं। सुश्री भटनागर की छंदमुक्त कविताओं की व्यग्रता में सत्-चित्-वेदना के सारे भाव तिरोहित हैं जिनसे उनकी कविता को संपूर्णता प्राप्त है। कहने का तात्पर्य यह कि इनकी कविताओं की व्यग्रता उनकी सृजनात्मकता का महत्वपूर्ण कारक है-

''माँ/देखने में बर्फ़-सी ठोस/शीतल और शान्त/पल-पल पिघलती है चुपचाप/संतान की पीड़ा और क्लान्त चेहरा देख/और/धूप-सी ठहरी रहती है उनके आस-पास/अविराम/अंगरक्षक समान।'' (पृष्ठ 47)

इनकी हर कविता स्वयं में पूर्ण है और इस पूर्णता को सौंदर्यबोधानुभव, जीवनानुभव और प्रतिबद्धता के निष्कर्ष पर जाँचा जा सकता है। बच्चन जी ने एक बार बड़े ही सहज भाव से कहा था कि 'गीत भाव-जगत की वाणी है।' मनुष्य की भावनाएँ जब तीव्र होती हैं, तब वह लयमय हो जाता है। तीव्र भावनाओं को झेलना कठिन होता है। लय उस झेलन में सहायक होती है। प्रकृति विचलित विक्षुब्ध, व्याकुल मनुष्य को लय में रख देती है जैसे माँ रोते बच्चे को पालने में डाल देती है-प्रकृति हमारी माँ है। वह एक लय में टहलने लगता है। भीतर एक ही प्रकार की बातें बार-बार उठने लगती हैं, वे ही लय में आती चली जाती हैं और फिर आती हैं और उस लय से मनुष्य शांत हो जाता है। यदि उसकी अभिव्यक्ति शब्दों में

की जाए तो वह स्वाभाविक ही गति का रूप ले लेता है।'' छन्दबद्ध कविता के क्षेत्र में सुश्री भटनागर की पकड़ भी बड़ी गहरी है। कविताओं के थोडे से शब्दों में जो विचार और भाव गंगा का निर्मल प्रवाह वक्त के किनारों को तोड़ता परिलक्षित होता है वह कवयित्री की मौलिक पहचान को रेखांकित करता है। उनका चिंतनशील मन आकर्षित होने पर अपनी निजता के अस्तित्व रक्षण में सदैव सजग और सावधान रहा है। उनकी प्रौढ़ सोच कवि कर्म की ईमानदारी का स्वयं प्रमाण है। अपनी कविता से जूझने की अंतर्निहित प्रेरणा उनकी भाव-क्षमता को तीखे तेवरों से पुष्ट करती है। 'कविता' की निम्न पंक्तियाँ उनके संकल्प को शाश्वत अभिव्यक्ति प्रदान करती है-

''कविता की पीड़ा को मैंने, अंतर्मन से जाना है।
कितना कुछ सहती है कविता, मैंने यह पहचाना है॥
कभी घुटन में जीती कविता, कभी आग बन जाती है।
जीवन हित लड़ती रहती वह, संघर्ष-गीत नित गाती है॥
धीरे-धीरे सदा पिघलती, कभी पाषाण बन जाती।
विष पी कर अमृत वह बाँटे, तभी कविता कहलाती॥'' (पृष्ठ 113-114)

आज वास्तविक चिंता की बात यह है कि मानव संवेदनाहीन हो गया है, नैतिकता से इतना शून्य हो गया है कि लोग अपने स्वार्थ हेतु दूसरों का बड़े से बड़ा अहित करने से बिल्कुल भी हिचकिचाते नहीं। परिणामस्वरूप कवयित्री इस बात को रेखांकित करते हुए कहती हैं-

''मौत नाचती आँखों आगे,
जीवन आँख मिचौली है।
मानव-मानव को है छलता,
घातक दशा घिनौनी है॥
जब-जब भी आतंक फैलता, लहु के प्यासे हो जाते।
गोले बरसाते अपनों पर, कब मिल-जुल कर रह पाते॥'' (पृष्ठ 137-138)

देश में मानव मूल्यों के ह्रास तथा जीवन की विद्रूपताओं के बावजूद कवयित्री को अपने देश से प्रेम है। उसकी अभिलाषा निम्नवत व्यक्त हुई है-

''देश-प्रेम की अलख जगी थी, जात-पात धर्मों से ऊपर।
सभी एक जुट बलिदानी थे, हुए शहीद कितने धरती पर॥
मई अठारह सौ सत्तावन, त्याग भरी वीरों की गाथा।
इतिहास का अमर पृष्ठ बन, जन-मन में नव जोश जगाता॥'' (पृष्ठ 133)

अनेक विषमताओं और विसंगतियों के बाद सुश्री सुकीर्ति जी जीवन में हताशा और निराशा को पास फटकने नहीं देतीं। वे कहती हैं-

''परम शांति का भाव वहीं,
जहाँ पुनीत निकेतन है।
पर को सुख दे, दुःख झेले,
कितना पावन वह मन है।'' (पृष्ठ 150)

इस पूरे काव्य संग्रह का अवगाहन कर ऐसा प्रतीत होता है कि कवयित्री की जीवन दृष्टि मानवतावादी है। उन्होंने समय की प्रत्येक त्रासदी पर कस कर चोट की है, पर विडम्बना पर लेखनी चलाई है और विपरीत जीवन-स्थितियों से लोहा लेने की सदैव बलवती इच्छा पाली है। इनकी छंदबद्ध कविताओं के तेवर अनेकत्र साक्षी हैं। ''सतत जलती रहूँ हर पल'' कविता के माध्यम से कवयित्री की प्रयोगधर्मा दृष्टि कितनी सटीक है और आम पाठक की अनछुई कल्पनाओं के शत-शत गवाक्ष कैसे उद्घाटित होते हैं, कविता प्रभावी ढंग से इस प्रकार अनुभूमि को चित्रात्मकता का ताना-बाना पहनाकर मुखर करती है-

''सहज शीतल किनारों से, सुवासित भावना ले कर।
महकती इन बहारों से, निरन्तर कामना ले कर॥
करूँ हर मन को मैं सुरभित, बने मधुमास हर जीवन।
हठीली आस की किरणें, करें हर श्वास में नर्तन॥
चुरा लूँ वेग लहरों का, तटों से गूँजता सरगम।
धवल शुभ चाँदनी ले लूँ, मृदुल कोमल, सहज सब क्षण॥'' (पृष्ठ 145)

विवेच्य काव्य-संग्रह 'अनुगूँज' को पढ़ कर अंत में यही कहूँगा कि इसमें युगबोध और युगव्यथा सहज और सरल ढंग से व्यक्त हुई है। मैं ऐसी अग्रज तुल्य-श्रद्धा कवयित्री को प्रणाम करता हूँ तथा प्रभु से इनकी दीर्घ जीवन और उत्तम स्वास्थ्य की कामना करता हूँ। साधुवाद!

| | | |
|---|---|---|
| कृति | : | अनुगूँज (काव्य संग्रह) |
| कृतिकार | : | सुश्री सुकीर्ति भटनागर |
| संस्करण | : | 2010 |
| मूल्य | : | 220 रुपये |
| प्रकाशक | : | अयन प्रकाशन महरौली, नई दिल्ली |

ooo

समीक्षा

# 'स्वागत है'— जन जीवन से रची-बसी कविताएँ

❑ डॉ. आदर्श

दिल्ली 10 मार्च को चलना था। मुजफ्फरनगर से डॉ. कृष्ण चन्द्र गुप्त का फोन मिला था कि उन्होंने 'वाणी' साहित्यिक संस्था की इस वर्ष प्रकाशित पुस्तक भिजवाने को कहा है।

पुस्तक 'पत्र-पुष्प' आ गई, ठीक समय पर, उधमपुर से मेरे रवाना होने से पहले। अपना संस्मरण जो अभी भी बची है-इसी में छपा था। पन्ने अभी पलटा ही किए थे, कि एक नाम पर नज़र ठिठकी।

'काज़ी फरीद पाशा'! कविताएँ पढ़ी सीधे दिल को छू गईं। तुरन्त मोबाइल नम्बर मिलाया। मिलते ही पूछा-'भाई तुम अपने खालापार वाले पाशा तो नहीं हो ? मैं डॉ. आदर्श बोल रहा हूँ।' शक इसलिए भी था कि जिस पाशा को मैं पैंतीस बरस पहले जानता था, वह अनपढ़ जैसी श्रेणी में आता था, पढ़ाई से उसका दूर-दूर तक कोई तआल्लुक न था, हाँ इतना जरूर था कि उसका एक अपना व्यक्तित्व था, सलीका था, टेस्ट था।

दूसरी तरफ से वही पुरानी खनकती आवाज सुनाई दी-'हाँ डाक्टर साहब। आप खालावार वाले डॉ. आदर्श बोल रहे हैं न! मुज्जफरनगर में सिर्फ-सिर्फ एक ही पाशा है।'

पाशा को लेकर कुछ यादें हैं। उन्हें अलग से लिखा जा सकता है। उसके पास अपने हाथों से सजाई संवारी एक साइकिल होती थी, जिस पर रोज कोई न कोई नया आकर्षक परिवर्तन हुआ होता। पाशा के हाथ कुछ न कुछ करने को मचलते। वह मेरे क्लीनिक पर आता और मेरी दवाइयों को सलीके से सजाता। एक बार उसने एक बड़ी बोतल में एक रंगीन पानी भर उस में कुछ ऐसी टयूबें फिट कीं कि वह एक बड़ा वैज्ञानिक प्रयोगशाला का उपकरण दिखने लगा। जो आगन्तुक आता, बैठने से पहले आश्चर्य से उसे देखता और सवाल पूछता। यह सब बातें 1975-76 की हैं।

तो पाशा के कविता लेखन ने हमें एक बार फिर जुड़ा दिया। कहना पाशा का था फोन पर-'खालापार' में गोरे चिट्टे सिर्फ एक ही डॉ. आदर्श आए थे।'

उसने मुझे अपने बारे में संक्षेप में बताया। पाशा जैसे मित्र का इतना विकास मेरे लिए

आनन्द मिश्रित आश्चर्य का विषय था। वह अपनी विषम परिस्थितियों से टकराता, सड़क का आदमी रह कर, सड़क की किताब पढ़ता-पढ़ता 'आदमी' बना है, जीवन्त संवेदन, लिए हुए। वह शख्स जो इन्सान की पहचान खुली आँख से रखता है। उसकी अहमियत से वाकिफ है। यह सब मैं तब जान पाया जब उसकी भेजी किताब 'स्वागत है', मेरे पास आई।

पाशा के पास खुली सोच है और यह समझ भी कि भाषाओं और लिपियों का सम्बंध अभिव्यक्ति के एक माध्यम के रूप में तो हो सकता है, किसी धर्म से नहीं। उर्दू, हिन्दी, अरबी, फारसी सब की सब उसके सीखने का विषय है, उसके विकास से सम्बन्ध रखती है न कि उसके धर्म से। कोई भी धर्म इतना संकीर्ण, इतना साम्प्रदायिक नहीं हो सकता कि स्वयं को एक भाषा तक सीमित कर ले।

पाशा को अपनी बात, आम आदमी की बात सरेआम पहुँचानी है, सीधी, सरल भाषा में, सीमित शब्दों में, सटीक लहज़े में। वह कोई बड़ा फलसफा बखानने के चक्कर में नहीं है। उसका सवाल सड़क से उठा है, आम आदमी से उठा है, उसकी परेशानियों, उसकी झुंझलाहट से उठा है, जिनके बीच में उसका विकास एक सुगन्धित पौधे की तरह हुआ है। उन्हीं के बीच वह दिन के चौबीसों घण्टे बिताता है, और उनकी चिन्ताओं, जद्दोजहद, दुखारियों से सीधा जुड़ाव रखते हुए उनकी बात को कविता में शब्द-शब्द पिरोता है।

अब 'रामसेतु' कविता ही देखें- 'अगर राम में 'तू' नहीं, तो फिर/रामसेतु भी नहीं/ और अगर राम से 'तू' है/तो फिर रामसेतु भी है।'

जब आप सीधे ईश्वर-अल्लाह से जुड़ जाते हैं, तो भला विवाद कैसा ? कहने को बचा ही क्या ? हां दूसरी बार 'रामसेतु' नए अर्थ खोल देता है। सारे धर्मों को लेकर सिर्फ बाहरी लड़ाई है, प्रतीकों की मारा-मारी है। न हिन्दू, न सिख, न मुसलमान, न ईसाई-अपने कथित धर्म में गहरे पैठा है। प्रत्येक धर्म 'प्रेम' से शुरू होकर, अपने अन्ध अनुयाइयों द्वारा ढोया जाता है जो उसे घृणा पर ला छोड़ते हैं और युद्धोन्माद शुरू हो जाता है। गूंगे को जो गुड़ का स्वाद सच्ची लौ लगा कर मिलता है, उसकी तरफ देखने की भला फुर्सत ही किसे है ? सीमित शब्दों में, बिना भाषणबाजी के कवि खूबसूरती से अपनी बात दिल के भीतर छोड़ता जा रहा है।

इसी तरह एक कविता है-'यू. पी. में है दम।' व्यंग्य के माध्यम से वह शब्द शक्ति पैदा की गई है जो बिना आवाज के चाँटें मारती है। ''हमारे हाथ में डिग्री, तुम्हारे हाथ में सत्ता, तुम कमाओ करोड़ों/हमें बेरोजगारी भत्ता/खूब लगाओ जख्मों पर नमकीन मरहम/यू. पी. में है दम।''

एक अन्य उल्लेखनीय कविता है–तुम्हारी मर्जी। बानगी देखें-दूसरों का सर ऊँचा करने के लिए/अगर अपने सर की फटी पगड़ी भी दोगे/तो इन्सान कहलाओगे/और अगर/अपना सर ऊँचा करने के लिए/दूसरों का सर कलम करोगे/तो इन्सान नहीं/तालिबान कहलाओगे। अब तुम्हारी मर्जी/तुम क्या कहलाना पसन्द करते हो/इन्सान या 'तालिबान'

इसी तरह इस संग्रह में 'हार-जीत' कविता एक ऊँची उड़ान भरती कविता है। कुछ कविताएँ दार्शनिक अन्दाज की हैं। कुछ-प्रेम पगी हैं। कुछ आदमीयत से दूर होते जीवन पर चिन्ता प्रगटाती हैं तो कुछ जीवन सम्बन्धी अमूल्य सूत्र बतलाती हैं। कुल मिला कर सभी कविताएँ जीवन हैं, और 'पाठक' को विचार समृद्ध करती हैं।

आप नहीं जानते पाशा ने और क्या लिखा है ? लेकिन यदि इसी तरह का, ज़िन्दगी से सीधे सरोकार का, इसी बानगी का, भारत के असली 'जन' का, उसी का सोच का, उसी की भाषा में यदि लेखन किया है तो निश्चित ही उसका स्वागत हुआ ही होगा, होना भी चाहिए।

पाशा से भविष्य में एक लेखक के रूप में मेरे भीतर असीम आशा जगती है। उसके इस रूप से मिलकर मैं अमीर महसूस कर रहा हूँ।

'स्वागत है' जैसी स्तरीय पुस्तक लेखन के लिए जो मुश्किल से पाठक के 10-20 मिनट लेती है, मेरी हार्दिक बधाई और शुभकामनाएं।

ooo

Regd.No.28871/76

April - May 2011

Published by the Secretary on behalf of

**J&K Academy of Art, Culture and Languages, Jammu**

and Printed at Classic Printers, Bari Brahmana, Jammu